CHAPTER 23

HINDI

Doctoral Theses

01. अनामिका
उत्तर –औपनिवेशिक चिवृति और हिन्दी उपन्यास ।
निर्देशक: प्रो. रेणुका दुग्गल
Th 27038

सारांश

साहित्य सदैव अपने युग एवं परिस्थितियों से घिरा होता है। समाज में होने वाले बदलावों को साहित्य के माध्यम से ही समझा जा सकता है। नई-नई प्रवृत्तियों से प्रभावित होते हुए साहित्य निरंतर नया होता जाता है। नयेपन के साथ ही यह विकसित होता है तथा तत्कालीन समाज के साथ जुड़ता है। साहित्य मानव चिंतन का प्रतिपफल है तथा इसके विकास के मूल में समाज में होने वाले निरंतर बदलाव है। मानवीय चित्तवृत्ति का निर्माण युगीन परिवेश तथा समाज के बदलावों और परिस्थितियों के प्रभाव से ही होता है यही कारण है कि साहित्य को समाज का दर्पण कहा जाता है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल हिंदी साहित्य के इतिहास का आरंभ चित्तवृति को केन्द्र में रखकर करते हैं। भारतेंदु युग के प्रतिनिधि साहित्यकार बालकृष्ण भट्ट तथा प्रख्यात आलोचक मैनेजर पांडेय साहित्य के विकास को जनसमूह की चित्तवृति का ही विकास मानते हैं। शुरूआती दौर में ध्र्म या उससे जुड़ी संस्कृति मानवीय समाज की सामूहिक चेतना के क्षेत्रा थे। आधुनिक काल में विज्ञान और सभ्यतामूलक संस्कृति ने उसकी जगह ले ली। उत्तर-आधुनिक काल में विमर्शों को केन्द्र में रखा गया। आधुनिक तथा उत्तर आधुनिक काल में भाव का स्थान विचार या मानसिकता ने ले लिया। मानसिकता हमें अस्मिताओं तक ले जाती है। उत्तर औपनिवेशिक चित्तवृति इन अस्मिताओं का प्रतिपफलन है तथा इसके केन्द्र में पूँजीवाद और आर्थिक नियंत्राण है। प्रफायड ने इसे मनोविज्ञान कहा, हुर्सल ने दृश्य-प्रपंच आधुनिक काल में तत्वमीमांसा की जगह ज्ञान मीमांसा ने ली तो तत्व दर्शन की जगह ज्ञानमूलक विचारधरा आई। उत्तर आधुनिक काल में ज्ञानमूलक विचारधरा का स्थान अर्थमीमांसा ने लिया। अर्थ मीमांसा के केन्द्र में है- भाष्यों का संसार। देरिदा जब भाषा के विखंडन की बात करते हैं तो उनकी नजर अन्य अर्थ पर टिकी रहती है। तमाम संरचनाएँ, स्थितियाँ, अनुभव एक पाठ है। और उनकी अनंत व्याख्याएँ हो सकती है। आधुनिक दौर में ज्ञान मीमांसा के केंद्र में विज्ञान था, उत्तर आधुनिक अर्थ-मीमांसा के केंद्र में है-केन्द्र का अपकेंद्रण, महावृतांतों का विरोध् तथा ज्ञान और सत्ता की सहअपराध्िता की धरणाएँ। उत्तर औपनिवेशिकता ने भी इन्हीं मूलभूत धरणाओं को अपनाया है। आधुनिकता की सर्वसमावेशी, समरूपतावादी, पूरा विश्व एक ग्राम की अवधरणाओं को उत्तर आधुनिकता सिरे से नकारती है। उत्तर-आधुनिकता एक संसार के भीतर कई संसार देखती है। उत्तर-औपनिवेशिक विमर्श, उत्तर-आधुनिक बौद्धिकविमर्शों के सिद्धांतोंका सर्वप्रथम सन् 1978 में उत्तर उपनिवेशवाद के रूप में 'एडवर्ड सईद' ने विकसित किया। एडवर्ड सईद का प्राच्यवाद का पश्चिमी शक्तियों द्वारा पूरब के हीन तथा कमजोर बताने वाले ज्ञान के वर्चस्व की पोल खोलता है। उत्तर औपनिवेशिक में फ्रैंफज पैफनन, एडवर्ड सईद,गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक, होमी के भाभा, प्रेफडरिक जेमसन, एजाज़ अहमद का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। एडवर्ड सईद का मानना है कि पुराने ढंग का साम्राज्यवाद तो नष्ट हो चुका है किंतु उसकी मानसिकता बची हुई है। पश्चिम के प्राच्यविदों ने पूरब के मन-मस्तिष्क को इस तरह अध्कृित कर लिया कि वे स्वयं को अपनी नज़र से नहीं बल्कि पश्चिम की नजर से देखे। एडवर्ड सईद के चिंतन का आधर विस्थापन की त्रासदी के कड़वे अनुभव है। गायत्री चक्रवर्ती स्पीवाक ने हाशिए के लोगों के बोलने की जमीन तैयार की। इनका मानना है कि पश्चिम के विकास, प्रगति, भूमंडलीकरण, नव उदारीकरण, प्रजातांत्रिकीकरण के तमाम दावे छल-छद्म से निर्मित है। इन सिद्धांतों के पीछे यूरो-अमेरिकी नव साम्राज्यवादी, नव-उपनिवेशवादी यथार्थ छिपा हुआ है। इसके कारण अपने ही देश के मूल निवासियों द्वारा अपने ही देश के निवासियों से जंगल, जमीन, नदियाँ छीनकर उन पर नियंत्राण किया जा रहा है। 1990 के दौर में भारत में आर्थिक सुधरों की शुरूआत हुई। उदारीकरण की शुरूआत हुई। उदारीकरण, भूमंडलीकरण तथा निजीकरण के द्वारा नई आर्थिक नीतियाँ लागू की गई। इन आर्थिक नीतियों के केंद्र में उपभोक्तावाद है जो नई-नई जरूरतें पैदा करता है। नए-नए तौर-तरीके या कहें एक नए जीवन ढंग को हमारे अंदर पैदा करता है। यह एक नये ढंग का मानसिक उपनिवेशन है।

विषय सूची

1. चितवृति और सैद्धांतिकी 2. उत्तर –उपनिवेशवाद : उदभव और विकास 3. साहित्य और उत्तर-उपनिवेशवाद 4. उतर-औपनिवेशिकता और हिन्दी उपन्यास 5. उतर-औपनिवेशिकता उपन्यासों की संरचना एवं उनका शिल्प, उपसंहार और संदर्भ एवं सहायक ग्रंथ सूची ।

02. अनिल कुमार
सूरदास के काव्य में आंचलिक परिवेश ।
निर्देशक: प्रो. अनिल राय
Th 26696

सारांश

भारीत्य इतिहास में भक्ति आंदोलन एक नवीन सांस्कृतिक चेतना का युग रहा है, जिसमें अनेक कवियों ने मानवीय-जीवन के चेतस उत्थान हेतु चिरकालीन साहित्यिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक संघर्ष किया। भक्ति आंदोलन का आविर्भाव दक्षिण भारत में अलवारों एवं नायनरों से हुआ जो कालांतर में उत्तर भारत सहित सम्पूर्ण भारत में फ़ेल गया। दक्षिण भारत के इस भक्ति आंदोलन पुरोहितवाद, शास्त्रज्ञान के दंभ अंधविश्वासों के प्रति विद्रोह, लोकभसहा के उदय तथा तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में जनता का सामंतवाद विरोधी सांस्कृतिक आंदोलन था जिसने समाज को ऐसे भक्त कवि, संत एवं सूफी कवि दिये जिनके काव्य का मूलधा लोक संस्कृति थी। प्रस्तुत शोध प्रबंध में विश्लेषणात्मक ढंग से 'सूरसागर' के संदर्भ में ब्रज कि संस्कृति के विभिन्न पहलुओं का विशद विवेचन किया गया है। आंचलिक जीवन से संबद्ध अनेक शब्द और अनेकाएक अविस्मृत परम्पराओं पर यहा प्रकाश डाला गया है। सूरदास के काव्य में आंचलिक परिवेश विषय निर्धारित करने के पश्चात 'सूरसागर' में निहित आंचलिक तत्वों कि व्याख्या करते हुए आंचलिक साहित्य के विविध अंगों, विभिन्न कलाओं विश्वासों, अनुष्ठानों एवं आंचलिक जीवन के बहिय पक्षा के अंतर्गत वर्णव्यवस्था, व्यवसाओं, वेषभूषा, खाद्यभूषा, खाद्य-पदार्थ और मनोरंजन के विविध साधनों का विवेचन तत्कालीन समाज के परिवेश में किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंच में आंचलिकता की परिकल्पना, परिभाषा, स्वरूप, लोकसंस्कृति व शिल्पगत वैशिष्ट्य की विस्तार से चर्चा की गई और यथासंभव आंचलिक तत्वों के परिप्रेक्ष्य में सूरदास के काव्य का निष्पक्ष अन्वेशण किया गया है।

विषय सूची

1. भूमिका 2. आंचलिकता की अवधारणा और सूर-काव्य में ब्रज का परिदृश्य 3. सूरदास का कृतित्व एवं तत्कालीन परिवेश 4. सूर-काव्य में लोक संस्कार, पर्वो उत्सव, साहित्य और कलाएं 5. तत्कालीन ग्रामीण जीवन और सूरदास का काव्य 6. सूरदास का काव्य में व्यवसाय के मुख्य स्रोत 7. सूरदास का अभिव्यक्ति कौशल, उपसंहार और संदर्भ एवं सहायक ग्रंथ सूची ।

03. अविनाश कुमार
हिन्दी ब्लॉग की दुनिया में साहित्य ।
निर्देशक: प्रो. मंजु मुकुल काम्बले
Th 27039

सारांश

भूमंडलीकरण, उदारवादी नीतियों और बाज़ार के प्रचार प्रसार के करण पिछले कुछ दशकों में इंटरनेट ने अपना दायरा बढ़ाया है। अब समाज के बहुत बड़े हिस्से तक इंटरनेट की पहुँच हुई है। इसने मीडिया के स्वरूप को बदला है और अब हमारे सामने सोशल मीडिया है। विश्व एक गाँव में बादल गया है या दुनिया हमारी पहुँच में है जैसे वाक्य को सोशल मीडिया सार्थक सिद्ध करता दिखली देता है। प्रोद्योगिकी ने समाज के लगभग सभी क्षेत्रों को प्रभावित किया है। वर्तमान समय में समाज का ऐसा कोई भी क्षेत्र दिखाई नहीं देता

जो प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से टेक्नालजी द्वारा न हो। वर्तमान समाज में हुए बदलाव के परिप्रेक्ष्य में सोशल मीडिया को देखें तो पते हैं कि लोग इंटरनेट का प्रयोग अपने तरीके से कर रहे हैं। घटनाओं, सेवाओं, व्यापार आदि के संबन्धित सूचनाओं के प्रति इंटरनेट ने लोगों कि जागरूकता बधाई है। साथ ही अपने विचारों को प्रकट करने के लिए इंटरनेट लोगों को एक नया प्लाटफार्म भी उपलब्ध करवाया है। लोगों कि इंटरनेट आधारित इस गतिविधि से एक ऐसे मीडिया का उदय हुआ जो बहुत तेज़ी से आम लोगों के साथ जुड़ा है। इसी मीडिया को सोशल मीडिया का नाम दिया गया है। एक तरह से देखा जाए तो सोशल मीडिया ने लोगों को एक वृहत्तर लोकतान्त्रिक मंच प्रदान किया है। इसके अंतर्गत ब्लॉग, फेस्बूक, ट्यूटर इन्स्टाग्राम, व्हाट्सएप आदि कि सुविधा उपलब्ध होती है। इंटरनेट सूचना समाज का आधारशिला है। वह एक क्रांतिकारी ग्लोबल जंनतांत्रिक माध्यम और नई आज़ादी देता है। वह एक साइबर जगत का निर्माण करता है जहां कोई भी तानाशाह नहीं हो सकता इंटरनेट पर सभी व्यक्ति अपनी स्वतन्त्रता से अपने विचारों को साझा कर सकते हैं और साथ ही दूसरों के लिखने पर अपने विचारों को प्रकट भी कर सकते है, एवं टिप्पणी भी दे सकते है यह लेखन का नया क्रांतिकारी मंच है। मैं अपने शोध के हिन्दी ब्लॉग में साहित्य किसके द्वारा किसके लिए कैसा और कब आ रहा है इसका आकलन करने का और विश्लेषण करने का प्रयास किया है।

विषय सूची

1.सोशल मीडिया और हिन्दी ब्लॉक 2. हिन्दी ब्लॉक में तथा हिंदीतर साहित्य 3. हिन्दी ब्लॉक की दुनिया में साहित्य और रचनाकारों का दायरा 4. हिन्दी ब्लॉग में साहितियक विधाओं का विश्लेषण 5. हिन्दी ब्लॉक की भूमिका का निर्धारण , उपसंहार और संदर्भ ग्रंथ सूची ।

04. आज़ाद (विजय भान)
रांगेय राघव द्वारा शेक्सपेयर के अनूदित नाटकों का समाज भाषावैज्ञानिक अध्ययन।
निर्देशिका: प्रो . मंजु मुकुल कांबले
<u>Th 26691</u>

सारांश

जब कोई अनुवादक विदेशी साहित्य को अपनी मूल भाषा में अनूदित करता है तो वह अनुवाद उस भाषिक समाज के कई अन्य तत्त्वों जैसे -सभ्यता, सामाजिकसांस्कृतिक-, भोगोलिक स्थितियाँ, संस्कृति और साहित्य में निहित संदेश आदि की जानकारी भी साथ लेकर आता है। ये सभी तत्त्व लक्ष्यभाषी पाठकों तक अनुवाद के माध्यम से ही पहुँचते हैं। इस प्रकार लक्ष्यभाषी पाठक और स्रोतभाषी साहित्य के बीच एक संबंध बन जाता है जिसमें अनुवाद कला एक सेतु का कार्य करता है। अनुवाद रूपी इसी सेतु के माध्यम से हिंदी पाठक वर्ग शेक्सपीयर जैसे महान साहित्यकार को जाननेसमझने में सक्षम हुआ। शेक्सपीयर की प्रसिद्धि ने - हिंदी साहित्यकारों का भी ध्यान आकृष्ट किया। इसीलिए हिंदी नाटककारों ने जहाँ शेक्सपीयर से प्रभावित हो अपनी नाट्य रचनाएँ की वहीं कुछ साहित्यकार सीधेसीधे इस नाटककार को अपनी भाषा में उतारने के - लिए लालायित हो उठे जिसके परिणामस्वरूप हिंदी साहित्य में शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवादों का सिलसिला चल पड़ा जो भारतेंदु युग से प्रारम्भ होकर अनवरत जारी है। जिसने हिंदी नाट्य साहित्य को न केवल समृद्ध किया अपितु पर्याप्त प्रभावित भी किया। इन सहोतीकारों ने न केवल शेक्सपीयर के भाषिक चमत्कारों से अपितु पश्चिमी समाज, साहित्य, संस्कृति और ग्रीक तथा रोमन मिथकीय प्रसंगों, बिंबों, संकेत विधान, धार्मिक पौराणिक विश्वासों आदि से भी हिंदी पाठक वर्ग को परिचित कराया और जिनका सिलसिलेवार विश्लेषण करना ही इस शोध का उद्देश्य है जिसके अंतर्गत अंग्रेजी हिंदी अनुवाद परंपरा पर एक नजर डालते हुए साहित्यिक अनुवाद के अध्ययन में उपयोगी विविध सिद्धांतों, शेक्सपीयर के नाटकों के अनुवादों की परंपरा से होते हुए रांगेय रोघव द्वारा दिये गये अनुवाद का सामजभाषावैज्ञानिक विश्लेषण करते हुए अन्य अनुवादकों द्वारा किये गये अनुवादों के तुलनात्मक अध्ययन तक की यात्रा सम्मिलित है जिनका सिलसिलेवार वर्णन निम्नलिखित अध्ययों में किया गया है -विषयानुक्रमणिका अध्याय-1 : अंग्रेजी से हिंदी में अनुवाद की परंपरा 1.1 काव्यानुवाद 1.2 नाट्यानुवाद 1.3 कथा साहित्य का अनुवाद अध्याय-2 : साहित्यिक अनुवाद के विश्लेषण की समाजभाषावैज्ञानिक प्रविधि 2.1 समाजभाषाविज्ञान की अवधारणा 2.2 समतुल्यता का सिद्धांत 2.3 व्यतिरेकी विश्लेषण 2.4 अर्थसंप्रेषण का सिद्धांत 2.5 प्रभाव समता का सिद्धांत 2.6 व्याख्या

का सिद्धांत 2.7 सांस्कृतिक संदर्भों के एकीकरण का सिद्धांत अध्याय-3 : शेक्सपीयर का रचना संसार 3.1 शेक्सपीयर की नाट्य रचनाएँ 3.2 शेक्सपीयर के नाटकों के हिंदी विद्वानों द्वारा किये गये अनुवाद अध्याय-4 : रांगेय राघव द्वारा शेक्सपीयर के अनूदित नाटकों का समाजभाषावैज्ञानिक अध्ययन 4.1 सामाजिक विश्लेषण 4.2 सांस्कृतिक विश्लेषण 4.3 भाषिक विश्लेषण अध्याय-5 : रांगेय राघव तथा हिंदी के अन्य विद्वानों द्वारा अनूदित शेक्सपीयर के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन 5.1 रांगेय राघव, हरिवंशराय बच्चन तथा अमृतराय के अनुवादों का तुलनात्मक अध्ययन (हेमलेट के संदर्भ में)5.2 रांगेय राघव, हरिवंशराय बच्चन तथा रघुवीर सहाय के अनुवादों का तुलनात्मक अध्ययन (मैकबेथ के संबंध में)5.3 रांगेय राघव तथा हरिवंशराय बच्चन के अनुवादों का तुलनात्मक अध्ययन।

विषय सूची

1. भूमिका 2. अँग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद की परंपरा 3. साहित्यिक अनुवाद के विश्लेषण की समाज भाषावैज्ञानिक प्रविधि 4. शेक्सपेयर का रचना-संसार 5. रांगेय राघव द्वारा शेक्सपेयर के अनूदित नाटकों का समाज भाषावैज्ञानिक अध्ययन 6. रांगेय राघव तथा अन्य विद्वानो द्वारा अनूदित शेक्सपेयर के नाटकों का तुलनात्मक अध्ययन . उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

05. ईश्वर (पवन कुमार)
भारतीय आख्यान परंपरा और मनोहर श्याम के उपन्यास ।
निर्देशक: प्रो. अनिल राय
Th 26688

सारांश

मैं पवन कुमार ईश्वर, मेरी पीएच.डी. शोध-प्रबंध का विषय 'भारतीय आख्यान परंपरा और मनोहर श्याम जोशी के उपन्यास' है। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से शोध-प्रबन्ध पाँच अध्यायो ं में विभाजित है। जिसकी रूपरेखा इस प्रकार हैयह कहा जा सकता है कि ''आख्यान वक्ता-श्रोता के बीच कही गई अपनी निरंतरता में संश्रृंखल घटना या घटनाओ ं का समूह है। उसमें इतिहास ही नहीं, कल्पना का अवलंब भी लिया जाता है। वह आकार में छोटा भी हो सकता है और बृहदाकार भी। वह गद्य आरै पद्य दोनो ं शैलियो ं में लिखा जा सकता है। वह वर्णनात्मक नहीं है, उसमें तार्किकता का सांद्र संनिवेश संभव नहीं है, उसमें अभिनेयता या प्रदर्शन नहीं है। घटना प्रधान होने से उसमें कहीं न कहीं कुतूहलवर्द्धकता भी विद्यमान रहती है, इसलिए रोचकता और रंजकता की स्थिति भी संभव है।'बृहत्कथा' और 'पंचतंत्र' की आख्यान परंपरा के उपजीव्य रचनाओ ं की सूची बनाई जाए तो वह काफी लंबी होगी। इनमें प्रमुख हैं- 'स्वप्नवासवदत्ता' (भास), 'मृच्छकटिकम्' (सूद्रक), 'रत्नावली' (श्रीहर्ष), 'कादम्बरी' (बाण), 'वेतालपच्चीसी' (अनेक लेखक), 'सिंहासनबत्तीसी' (अनेक लेखक), 'शुकसप्तती' (चिंतामणि भट्ट) इत्यादि। समग्रतः 'बृहत्कथा' एवं 'पंचतंत्र' ने भारत ही नहीं पूरे विश्व आख्यान परंपरा को प्रभावित किया है। आधुनिक युग के रचनाकारा जब भी लोकाख्यान शैली में रचना करना चाहेंगे तो उन्हें निस्संदेह 'बृहत्कथा' व 'पंचतंत्र' की परंपरा से जुड़ना ही होगा।आधुनिक काल में 'खंडकाव्य' व 'लंबी कविता' के रूप में आख्यानात्मक साहित्य का तो विकास हुआ ही साथ ही आत्मकथा, यात्रावृतांत कहानी, उपन्यास आदि विधाओ ं में भी आख्यानात्मक साहित्य लिखे गए। इन आख्यानात्मक साहित्य को हम आधुनिक आख्यान कह सकते हैं। यानी ऐसे आख्यान जिसका निर्माण कवि या लेखक स्वयं अपनी कल्पना के माध्यम से करना है, न कि परंपरा से प्राप्त आख्यान का उपयोग करके। हाँ कहीं-कहीं पौराणिक मिथको ं का सहारा जरूर लिया जाता है या कई बार खुद ही मिथक गढ़ लिया जाता है। नए जमाने के नए यथार्थ को चित्रित करने के लिए पुरानेआख्यान फीके पड़ने लगे, इसलिए नवीन युगीन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए रचनाकार ने अपने आख्यान साहित्य में नवीन कथाओ ं का निर्माण किया। इन नवीन कथाओं से निर्मित आख्यान साहित्य की आधारभूमि तो यथार्थ ही है, परंतु इनमे ं कल्पना का जोर ज्यादा है।मनोहर श्याम जोशी के परिवेश ने उन्हें हरफनमौला लेखक बनाया। वे खेल, विज्ञान, साहित्य, कला,

इतिहास ऐसा कोई विषय नहीं था, जिस पर कलम नहीं चला सकते थे। वे कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा जोड़ने की कला में माहिर थे। सत्य के एक साथ कई-कई चेहरे दिखाकर चमत्औत करते थ। 'फंतासी' पर विशेष जोर नहीं था, फिर भी अपने कई उपन्यासो ं में एक कल्पना लोक का निर्माण करते थे।मनोहर श्याम जोशी जब भी उपन्यास लिखने बैठते हैं तो उनके दिमाग में 'भारतीय आख्यान' परंपरा हमेशा से रहती है। इस बात को उन्होनं े अपने दो उपन्यास के पहले पेज पर स्वीकार भी किया है। अपने दूसरे उपन्यास 'कसप' (जो कि प्रेमकथा है) मे ं लिखते हैं, "विचित्र ही है यहाँ सब क्यों ि क मूल कथा संस्औत में लिखी बढे उपन्यास की शुरूआत ही इस प्रकार है, "अफसोस कि यह कहानी पहले लिखी जा चुकी है। यह अफसोस उस सैद्धान्तिक स्तर पर जाहिर किया गया न समझा जाय कि हर कहानी ही एक तरह से पहले लिखी जा चुकी होती है क्यों ि क कहानी में जो तीन तत्व हाते े हैं- घटनाएँ, पात्रो ं के चरित्र एव ं उनकी भूमिकाएँ और देशकाल- उनमें से पहले दो के अंतर्गत कुछ मौलिक कर दिखाने की संभावना शायद गुणाढ्य के 'बृहत्कथा' लिख डालने के साथ ही चुक गयी थी।"21 ऊपर के दो उद्धरणो ं से यह भी स्पष्ट है कि मनाहे र श्याम जोशी को जब भी मौका मिलता है तो अपने पूर्वजों के प्रति आभार प्रकट करने से नहीं चुकते, उनसे ग्रहण करने की बात मानते हैं। और यही इस शोध की परिकल्पना भी थी कि मनोहर श्याम जोशी भारतीय आख्यान परंपरा की गहरी समझ रखते हैं और उसका उपयोग अपने उपन्यासों में करते हैं।

विषय सूची

1.प्राक्कथन 2. आख्यान के अवधारणा: अर्थ और स्वरूप। 3. प्राचीन भारतीय साहित्य में आख्यान परंपरा । 4. हिन्दी साहित्य में आख्यान परंपरा का विकास। 5. उपन्यासकार मनोहर श्याम का रचनात्मक परिवेश। 6. मनोहर श्याम जोशी के उपन्यासों में आख्यान का परिदृश्य। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

06. गुप्ता (श्रवण कुमार)

संस्कृत काव्यशास्त्र और रीतिकालीन लक्षण ग्रन्थों के बीच समानता एवं असमानता ।

निर्देशक: प्रो. श्यौराज सिंह

Th 27041

सारांश

संस्कृत काव्यशास्त्र भारीत्य मनीषा का अप्रतिम और अभूतपूर्व दें है जिसमें काव्य संबंधी सूक्ष्म से सूक्ष्मतर चिंतन हुआ, जो की सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। संस्कृत के काव्यशास्त्रियों ने काव्य के हरेक अंगों- उपांगों पर वाद-विवाद –संवाद किया और अपने- अपने दृष्टिकोणो से काव्य को परखा। भारतीय इतिहास में इसकी सुदीर्घ और वृहत परंपरा रही है जिसका समकाल 6वीं शताब्दी से लेकर 17वीं शताब्दी तक माना जाता है। इन ग्यारह सौ वर्षों में भामह, दंडी, कुतंक, वामन, आनंदवर्धन, राजशेखर, मम्मट , विश्वनाथ, पंडित राज जगन्नाथ जैसे प्रकांड विद्वान हुए। इनमे से प्रायः सभी विद्वानों ने काव्य को अपने देशकाल के अनुसार परिभाषित किया है जो उनकी मौलिक चिंतना शक्ति की उपज थी। मेरे शोध का विषय सम्पूर्ण संस्कृत काव्यशास्त्र के साथ साथ रीतिकाल के काव्य लक्षण ग्रंथ है। इस विषय में काव्य के सभी अंगों की चर्चा करते हुए उनका तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। काव्यशास्त्र और रितिकालीन लक्षण ग्रन्थों का समग्र विवेचन इस शोध के विशयत क्षेत्र में समाहित है। आचार्यभरत से लेकर पंडित राज जगन्नाथ तक संस्कृत काव्यशास्त्र में आए परिवर्तनों और उत्तरोत्तर विकास की खोज तथा काव्यागत चिंतना का चरमोत्कर्ष भी शोध के विषय क्षेत्र में अंतर्निहित है। दो भाषाओं में हुए समान चिंतन की तुलनात्मक अध्ययन शोध की एक बहू-प्रचलित और मान्यपद्धति है। जहां दो चिंतन प्रणालियों समान स्तर पर खड़ी हों और जिनके आपसी घर्षण से कुछ नया निकलता हों वहीं तुलनात्मक अध्ययन प्रासंगिक और उपयोगी होता है। इस शोध का मूल ध्येय यह है कि संस्कृत काव्यशास्त्र से रितिकालीन लक्षण ग्रन्थों कि तुलना करते हुए उन सभी कारणों कि सूक्ष्म पड़ताल करना, जिसने काव्यशास्त्र कि परंपरा को प्रभावित कर रितिकालीन आचार्यों को लक्षण ग्रंथ कि रचना करने के लिए विवश किया।

विषय सूची

1.काव्यशास्त्र का अर्थ, स्वरूप, परिभाषा , उद्भव एवं नामकरण 2. संस्कृत एवं रीतिकालीन हिन्दी आचार्यों का काव्यचिंतन 3. संस्कृत एवं हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिवृत 4. शब्द शक्ति चिंतन 5. रस चिंतन 6.अलंकार चिंतन 7. रीति चिंतन 8. ध्वनि चिंतन. उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

07. जीनगर (गोपाल)
हिन्दी दलित कहानी में स्त्री विषयक दृष्टि ।
निर्देशक: प्रो. श्यौराज सिंह
Th 27269

सारांश

सरचनात्मक हिंसा के विभिन्न रूपों मे से एक है- जाती प्रथा। इस प्रथा की उत्पत्ति पर समाजशास्त्रियों एवं इतिहासकारों ने अनेक पहलुओं से शोध कार्य किया है लेकिन साहित्यकार अपने साहित्य के माध्यम से सामाजिक विज्ञान के विषयों से भिन्न पक्ष रखता है। सामाजिक विज्ञान का मुख्य कार्य यथास्थिति का विश्लेषण करना होता है जबकि साहित्यकार यथास्थिति में तीर्व परिवर्तन का हिमायती होता है। दलित साहित्य इसका यथेष्ट उदाहरण है। वर्तमान को समझने के लिए अतीत को समझना आवश्यक है। दलित विमर्श का भी अपना अतीत है। यह विमर्श अनेक वाद-विवाद-संवाद से गुजरकर नब्बे के दशक के बाद काँच कि तरह साफ हो गया तथा इसने सामाजिक कीचड़पन में स्वच्छ कमाल कि तरह स्वयं को स्थापित किया। लेकिन कुछ ऐसे विवाद और प्रश्न भी रहे जो आंतरिक अंतद्वंधों से गिरे रहे। उनमे मुख्य है। 'दलित' शब्द। दलित लेखन से पूर्व गैर दलित लेखकों ने जीवन कि समस्याओं पर स्तरीय कथा-साहित्य लिखा है लेकिन उनका साहित्य केवल दारुण व्यक्ति कि कथा करुणा से भरे दीन-हीं दलित जीवन तक ही सीमित रहा। प्रेमचंद इनमे महत्वपूर्ण नाम है। जबकि नब्बे के दशक के बाद का दलित साहित्य अंबेडकर वाद से प्रेरित हाइल विमर्शमूलक कहानियाँ स्वानुभूति के संदर्भ पर रची गई थी लेकिन विमर्शमूलक साहित्य हमेशा मूल सामग्री में नहीं होता है। कई बार उसका इस्तेमाल मुलम्मे कि तरह होता है। कुछ परिचित छवियों, मुद्राओं और मुहावरों का प्रयोग रचना पर अपेक्षित 'टैग' बंधनाने के लिए किया जाता है। ऊपर तौर पर रचनाएँ मात्र शब्द जाल बुनती है। ऐसी कहानियाँ सूक्ष्म अनुभवों को आने से रोकती है। विमर्श कि शुरुआत में लिखी 'मैं शैली' कि कहानियाँ प्राणवान थी, लेकिन अब कहानियाँ अन्य शैली में भी दिखलाई पड़ती है। कुछ कहानियों में 'मैं' शैली ही नायक, वाचक, टिप्पणीकार और विमर्षकार तक कि भूमिका में आ गया है। दलित कहानियों व्यापक संभावनाओं से पूर्ण है और साहित्य को नवीन दिशा-दशा को अग्रसर है। यह अस्मितामूलक विमर्श से आगे बढ़कर उन सरोकारों कि और बढ़ रही है जो साहित्य में अछूते रहे है। अतः दलित साहित्य नई शताब्दी में नई साहित्यिक संभावनाओं का साहित्य है जिससे समाज प्रगतिशील और मानवीय मूल्य के प्रति प्रतिबद्ध हो सकेगा।

विषय सूची

1.दलित साहित्य की अवधारणा। 2. स्त्रीवाद की अवधारणा और दलित स्त्रीवाद। 3. हिन्दी कहानी का विकास और हिन्दी दलित कहानी। 4. हिन्दी दलित कहानी में जातिवाद और पितृसत्ता. 5. हिन्दी दलित कहानी के विभिन्न सरोकारों का अध्ययन। 6. दलित हिन्दी कहानियों में भाषा और शैली. उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

08. जैन (निशांत)
कवि बनारसीदास के साहित्य मैं सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यातिमिक मूल्य ।
निर्देशक: प्रो. पूरनचंद टणडन
Th 27042

सारांश

कवि बनारसीदास से मेरा पहला परिचय स्नातक की पढ़ाई के दौरान हुआ। उन दिनों मैं मासिक पत्रिका 'कादम्बिनी' पढ़ा करता था। इसी पत्रिका के किसी अंक में हिन्दी की पहली आत्मकथा - 'अर्द्धकथानक' और उसके लेखक बनारसीदास पर एक रोचक लेख छपा था। उस समय यह लेख मुझे विस्मित और आकर्षित सा कर गया था। मेरठ से एम.ए. के बाद नेट-जे.आर.एफ. की परीक्षा उत्तीर्ण करके मैं एमफिल. करने दिल्ली विश्वविद्यालय आ गया। उन दिनों दिल्ली में यत्र-तत्र घूमता रहता था। एक दिन एक किताब की दुकान पर पेंगुइन से प्रकाशित रोहिणी चैधरी द्वारा किया गया अर्द्धकथानक का अनुवाद दिखा। झट से मैंने उसे उठा लिया और पढ़ डाला। मेरे आश्चर्य और उत्साह की कोई सीमा न थी। आज से लगभग पौने चार सौ साल पहले भी क्या कोई आत्मकथा इतने आधुनिक ढंग से और बे-बाक अन्दाज़ में लिखी जा सकती है, यह विश्वास कर पाना किसी के लिए भी कठिन होगा। उस समय भी मेरा मन था कि एम.फिल. का लघु शोध-प्रबंध अर्द्धकथानक पर लिखूँ, पर मेरे शोध-निर्देशक महोदय ने मुझे बनारसीदास का संपूर्ण साहित्य पढ़ने के लिए प्रेरित किया और यह विचार हुआ कि बनारसीदास के समग्र साहित्य पर पीएच.डी. किया जाना बेहतर रहेगा। इस तरह मैंने राजभाषा के रूप में हिन्दी की स्थिति को एम.फिल. के लघु शोध-प्रबंध विषय के रूप में चुना और निर्णय लिया कि बनारसीदास के व्यक्तित्व और कृतित्व के समग्र मूल्यांकन पर एम.फिलके बाद पीएच.डी. करूँगा। वर्ष 2013 के अंत में एम.फिल. जमा करने के बाद लोक सभा सचिवालय की संपादन और अनुवाद सेवा में अनुवादक के रूप में नौकरी मिल गई। वहाँ रहते-रहते 2015 में यूपीएससी परीक्षा उत्तीर्ण की और भारतीय प्रशासनिक सेवा का अधिकारी बन गया। फिर अकादमी में प्रशिक्षण और उसके बाद एक के बाद एक पदस्थापन और अलग-अलग शहरों में काम करते-करते भी बनारसीदास और पीएच.डी. दोनों का मोह नहीं छूटा। अंततः वर्ष 2018 में मैंने दिल्ली विश्वविद्यालय की पीएच.डी. प्रवेश प्रक्रिया में हिस्सा लिया और फ़रवरी 2019 में मेरा पीएच.डी. में पंजीकरण का स्वप्न साकार हुआ। शोध विषय और विश्वविद्यालय का चयन मैं वर्षों पहले कर ही चुका था। यह भी एक सुखद संयोग और सौभाग्य ही था कि मुझे मेरे एम.फिल. के शोध-निर्देशक प्रोफ़ेसर पूरन चंद टंडन ही पीएच.डी. में भी मिले। शोध विषय था- 'कवि बनारसीदास के साहित्य में सामाजिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक मूल्य'। बनारसीदास का जन्म सन् 1587 ई. में जौनपुर में हुआ। वह मुख्यतः वर्तमान उत्तर प्रदेश के जौनपुर, बनारस, इलाहाबाद और आगरा नगरों में रहे। तुलसीदास के समकालीन कवि बनारसीदास के साहित्य में मुगलकालीन इतिहास, समाज, संस्कृति, राजनीति, अर्थव्यवस्था, धार्मिक विश्वास और जीवन शैली की बहुत प्रामाणिक झलक मिलती है। बनारसीदास का पूरा जीवन संघर्षों और असफलताओं से भरपूर होकर भी रोचक और प्रेरक है। उनका आशिक़ी में लग जाना, अंधविश्वासों का अभ्यास, व्यापार के सिलसिले में कई शहरों की यात्रा और एक के बाद एक असफलताएँ, पारिवारिक जीवन में एक के बाद एक अपनों का वियोग, अध्यात्म को समझने की चेष्टा और अंततः कर्मकांड से विरक्ति; उनके जीवन में सब कुछ इस तरह घटता है, जैसे कोई नाटकीय चलचित्र चल रहा हो। उनकी कुल पाँच रचनाओं में से 'नवरस पदावली' उपलब्ध नहीं है। कहते हैं कि 14 वर्ष की आयु में लिखी 1000 दोहे-चैपाइयों वाली यह रचना उन्होंने अध्यात्म के प्रभाव में आने के बाद गोमती नदी में बहा दी थी। सन् 1613 में लिखी गई 'बनारसी नाममाला' संस्कृत की धनंजय नाममाला से प्रेरित 175 दोहों का कोश है। उनके दार्शनिक और आध्यात्मिक चिंतन का आधार 'समयसार नाटक' 13 द्वारों में विभक्त एक आध्यात्मिक पद्यबद्ध रचना है, जिसे उन्होंने सन् 1636 के आस-पास लिखा। उनकी कीर्ति का मुख्य स्तंभ 'अर्द्धकथानक' 675 दोहे-चैपाइयों में लिखी गई एक अद्भुत रचना है, जो हिन्दी की पहली आत्मकथा के रूप में समादृत है। अर्द्धकथानक उन्होंने लगभग 55 वर्ष की आयु में सन् 1641 में लिखी। अंतिम रचना 'बनारसीविलास' है, जो वस्तुतः उनकी 58 फुटकर रचनाओं का संग्रह है। बनारसीविलास का संकलन पं. जगजीवन ने बनारसीदास की मृत्यु के बाद सन् 1644 में किया।

विषय सूची

1. कवि बनारसीदास का व्यक्तित्वऔर कृतित्व 2. कवि बनारसीदास के साहित्य में सामाजिक मूल्य 3. कवि बनारसीदास के साहित्य में सांस्कृतिक मूल्य 4. कवि बनारसीदास के साहित्य में आध्यातिमिक मूल्य 5. कवि बनारसीदास के साहित्य की भाषा एवं शिल्प 6. हिन्दी साहित्य में कवि बनारसीदास का स्थान. उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

09. धनंजय प्रताप

हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त आदिवासी समाज : संघर्ष और चेतना ।
निर्देशक: डॉ . स्नेह लता नेगी
Th 27040

सारांश

आदिवासी समाज मानव सभ्यता के विकसित इतिहास में सबसे ज्यादा उपेक्षित, उत्पीड़ित और शोषित समाज क्यों है क्या कारण है कि आज यह समाज घोर गरीबी, कुपोषण, अशिक्षा, अलगाव, बेरोजगारी, बेदख़ली, अंधविश्वास और भारतीय राष्ट्र-राज्य के दहशत से जूझते बदहाल जीवन जीने के लिए अभिशप्त हैं। आधुनिक सभ्यता एवं संस्कृति से आदिवासी समाज क्यों दूर होना चाहता है? विकास और वैज्ञानिकता को मनुष्य जाति के विनाश के रूप में ही नहीं बल्कि समूची पृथ्वी के नष्ट हो जाने की आशंका के रूप में क्यों देख रहा है। क्यों यह समाज अपनी पारम्परिक सामाजिक-सांस्कृतिक जीवन-मूल्यों के साथ ज़िन्दा रहना चाहता है क्यो यह समाज अपनी अस्मिता को जल, जंगल, जमीन, भाषा, संस्कृति से जोड़कर देखता है ? इस क्या, क्यों का जवाब आदिवासी आन्दोलन के पास है। इन्हीं चिंताओं के साथ यह शोध-कार्य किया गया है। यह शोध-प्रबंध साहित्यिक साक्ष्यों के आधार पर आदिवासी मुक्ति के निमित्त चली आ रही आदिवासी आन्दोलन की समीक्षा प्रस्तुत करता है। आदिवासी आन्दोलन का इतिहास औपनिवेशिक काल से प्रारम्भ हो जाता है। मानव सभ्यता का विकास ही युद्धों और वर्चस्व की संस्कृति पर निर्मित हुई है। युद्धों के विध्वंस के बाद एक ओर नयी समाज-संस्कृति जन्म लेती है, तो दूसरी ओर उसके समानांतर एक संस्कृति की मृत्यु हो जाती है। यह सिलसिला मानव सभ्यता के विकास से अब तक चलायमान है। वर्तमान समय में आदिवासी समाज की जो स्थिति है वह युद्धों और वर्चस्व की संस्कृति के कारण ही निर्मित हुई है। दरअसल, युद्ध और वर्चस्व की संस्कृति की आदिम विरासत को मानव समाज आज भी ढो रहा है। जिसके कारण पूरी दुनिया में भेद-भाव, असमानता और शोषण व्याप्त है। पूरी दुनिया के दुःख, शोषण और असमानता को देखकर प्रो. वीर भारत तलवार को पूरी दुनिया ही शोषण की दुनिया दिखती है। वे लिखते हैं, "यह दुनिया शोषण की दुनिया है। इस दुनिया में ताकतवर कमजोर को दबाता है, शक्तिशाली देश कमजोर देशों को लुटते हैं, आगे बढ़ी हुई जातियाँ कमजोर जातियों का शोषण करती हैं।" युद्ध, वर्चस्व और शोषण की संस्कृति को चुनौती देना आदिवासी आन्दोलन का उद्देश्य है। आदिवासी समाज यह अच्छी तरह से जानता है कि युद्ध और वर्चस्व की संस्कृति को समाप्त किये बिना एक स्वस्थ, प्रगतिशील समाज की निर्मिति नहीं हो सकती। युद्ध और वर्चस्व की संस्कृति ऐसे ही फूलती-फलती रहेगी तो वह दिन दूर नहीं जब मानव सभ्यता का समूल नष्ट हो जायेगा। ऐसे ख़तरे को आदिवासी समाज और उनका आन्दोलन अच्छी तरह से जानता है। यह समाज मानव सभ्यता को बचाने के लिए अपनी पूरी ताकत के साथ संघर्ष कर रहा है। इस शोध प्रबंध में आदिम युग से आधुनिक युग तक के आदिवासी समाज के अन्दर बाहरी हस्तक्षेप और अतिक्रमण के खिलाफ हुए संघर्ष का विश्लेषणात्मक और आलोचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इस शोध-कार्य के लिए जिन हिन्दी उपन्यासों को आधार बनाया गया है वे आदिवासी समाज के आन्दोलनों पर केन्द्रित हैं। जिसमें आदिवासी और गैर आदिवासी दोनों शामिल हैं।

विषय सूची

1. आदिवसी साहित्य का स्वरूप 2. हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी जीवन संघर्ष के विविध आयाम 3. स्वतन्त्रता पूर्व आदिवासी समाज मैं सघर्ष और चेतना 4. स्वतंत्रयोत आदिवासी समाज में संघर्ष और चेतना 5. समकालीन आदिवासी समान में संघर्ष और चेतना , उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

10. पवार (ज्योति)
रीतिकाव्य में निरूपित नायिका-भेद का मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय अध्ययन ।
निर्देशका: प्रो. विनीता कुमारी
Th 26692

सारांश

मनोविज्ञान मानव स्वभाव, मानव व्यवहार का विश्लेषण करता है। साहित्य और मनोविज्ञान की आधारभूत सामग्री लगभग एक ही है। दोनो ं ही व्यक्ति को समझने का प्रयास करते हैं। मनोवैज्ञानिकता का संबंध व्यक्ति के वास्तविक जीवन से है और साहित्य अनुभूतिपूर्ण जीवन की अभिव्यक्ति होता है। साहित्य और मनोविज्ञान का अभिन्न संबंध है। मानव जीवन में मनोवैज्ञानिकता का असाधारण महत्त्व है क्योंि क साहित्य मनोविज्ञान के सिद्धांतों से प्रभावित होता है। आज का साहित्यकार बाह्य जीवन की औत्रिमता को त्यागकर मानव-मन की गहराई को नापने में संलग्न है। वह मानव के मन, चेतना एवं व्यवहार को समझने का प्रयास करता है। अतः साहित्य और मनोविज्ञान दोनो ं व्यक्ति को समझने और जानने की चेष्टा करते हैं। इस प्रकार मनोविज्ञान का संबंध मानव जीवन से है और साहित्यकार उस वास्तविक जीवन को कलात्मक रूप प्रदान करता है। इस प्रकार साहित्य की आधारभूमि मनोविज्ञान है। मनोविज्ञान मन का विज्ञान है। इस विज्ञान के द्वारा व्यक्ति की मानसिक क्रियाओं तथा उनके आधार पर शारीरिक चेष्टाओं का अध्ययन किया जाता है। मनुष्य के सभी कार्य मानसिक भावों से प्रभावित होते हैं, इसलिए संस्औत आचार्यो ने 'मनसा-वाचा-कर्मणा' का महत्त्व स्थापित किया। इसका तात्पर्य यह है कि प्रत्येक भाव की अनुभूति सर्वप्रथम मन के द्वारा होती है। तत्पश्चात् व्यक्ति उन भावों को वाणी के माध्यम से व्यक्त करता है। इस प्रकार 'मनसा-वाचा-कर्मणा' का सिद्धांत आज कुछ परिवर्तित होकर आधुनिक मनोविज्ञान के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है। साहित्य मानव अनुभूतियो ं और सामाजिक व्यवहार का दर्पण होता है। साहित्यकार अपनी व्यक्तिगत कल्पनाओं और प्रतीकों के आधार पर, यथार्थ के धरातल पर, मानवीय संवेगों को संजोकर कोई रचना करता है। दूसरी ओर मनोविज्ञान व्यवहार का विज्ञान है जो मन में उठते अंतर्द्वन्द्वों, संवेगों और उद्वेगों के प्रभाव का अध्ययन करता है। साहित्य और मनोविज्ञान दोनों के विवेचन के बाद यह कहा जा सकता है कि साहित्य मानव अनुभूतियों और सामाजिक व्यवहार का दर्पण होता है। साहित्यकार अपने व्यक्तिगत अनुभव, कल्पनाओं, प्रतीकों, मानवीय संवेगों को आधार बनाकर कोई रचना करता है। दूसरी तरफ मनोविज्ञान व्यवहार का मनोविज्ञान है। यह मन में उठने वाले संवेगों और उद्वेगों, अंतर्द्वन्द्वों के प्रभावों का अध्ययन करता है। साहित्यकार अपने अनुभवों, अनुभूतियों और सामाजिक वातावरण से प्रभावित होकर कोई रचना करता है। जीवन में घटित, घटनाओं का आधार ग्रहण कर कवि या साहित्यकार अपने अंतर में व्याप्त अनुभूति को कलात्मक स्वरूप देता है। साधारण व्यक्ति जिस भाव को साधारण शब्दों द्वारा कह देता है, कवि उन भावों को कल्पना के साथ पिरोकर काव्य-कला के रूप में प्रयुक्त करने में सक्षम होता है। इस प्रकार कवि का जीवन ही मनोविज्ञान का महत्त्वपूर्ण भाग है। जीवन से अलग करने पर मनोविज्ञान नाम का कोई विज्ञान नहीं रहता, क्योंकि मनोविज्ञान के द्वारा व्यक्ति के जीवन संबंधी महत्त्वपूर्ण सत्य उद्घाटित होते हैं। कवि की अनुभूतियाँ ही भावों के रूप में काव्य में अभिव्यक्त होती हैं। अतः जीवन तथा मनोविज्ञान को एक-दूसरे से अलग करके नहीं देखा जा सकता है। जब हम रीतिकवियो ं के जीवन पर विचार करते हैं तो उनके समस्त जीवन में व्याप्त मनोवैज्ञानिक तथ्यों एवं सत्यों को देखने का प्रयास किया जा सकता है। यद्यपि इन कवियो ं के व्यक्तिगत जीवन-वृत्त से संबंधित कोई प्रामाणिक गंथ उपलब्ध नही ं हुए हैं, परंतु उनकी रचनाओं में अभिव्यक्त अंतः साक्ष्य तथा विभिन्न विद्वानों द्वारा उक्त विचारों क बाह्य साक्ष्य के आधार पर ही उनके जीवन के संबंध में कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

विषय सूची

1.प्राकथन 2. मनोवैज्ञानिक और साहित्य से उसका संबंध 3. समाजशास्त्र: परिभाषा और विषय परिधि। 4. रीतिकालीन कवियों द्वारा निरूपित नायिका भेद। 5. रीतिकाव्य में निरूपित नायिका भेद का वर्गिकरण एवं मनोवैज्ञानिकअध्ययन 6. रीतिकाव्यों द्वारा निरूपित नायिका भेद का वर्गीकरण उसका समाजशास्त्रीय अध्ययन । 7. नायिका की सहायिकाओ का मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय दृष्टि से अध्ययन। उपसंहार, तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

11. पटेल (अभिप्सा)
सठोत्तरी हिन्दी गीतिकाव्य का सौन्दर्य शास्त्रीय अध्ययन ।

निर्देशक: प्रो. श्योराज सिंह
Th 26699

सारांश

सौन्दर्यशास्त्र' अंग्रेजी शब्द एस्थेटिक्स' का हिंदी पर्याय है। भारतीय साहित्य में यह बहुत पुराना शब्द तो नहीं है लेकिन वैदिक ऋषियों मनीषियों ने जीवन और प्रकृति को एक सार्वभौम दृष्टि से समझने के क्रम में सुन्दर' अथवा सौन्दर्य' का विशद् विवचे न अवश्य किया है। भारतीय काव्यशास्त्र में भी रस के प्रसगं मे इसकी विस्तृत व्याख्या हुई है। प्रस्तुत शोध-प्रबधं सठोत्तरी हिंदी गीतिकाव्य का सौंदर्यशास्त्र अध्ययन में सौंदर्य एवं सौंदर्यशास्त्र की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक मान्यताओ की चर्चा करते हुए नवगीत की कलागत रचना-प्रक्रिया एवं बदलते सौन्दर्य-बोध के विविध पहलुओं का विवेचन-विश्लेषण किया गया है। आधुनिक हिंदी साहित्य में सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन के संदर्भ में यद्यपि काव्य-चेतना के प्रमुख घटकों एवं शैल्पिक उपकरणों पर विचार तो हुए हैं किंतु साठोत्तरी हिंदी गीतिकाव्य के संदर्भ में अब तक कोई सर्वांगपूर्ण सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन नहीं हुआ है। इस दिशा में यह प्रथम और नवीन प्रयास होगा- ऐसा हम मानते हैं। शोध-प्रविधि को ध्यान में रखते हुए विषय-प्रस्तुति की क्रमबद्धता एवं स्पष्टता के लिए हमने अपने शोध-प्रबंध को पाँच अध्यायों में विभक्त किया है।जैसा कि हमने अपने शोध-प्रबंध में रेखांकित किया है कि सौन्दर्यशास्त्र' का क्षेत्र अत्यंत व्यापक है। प्रारंभ में इसका संबंध दर्शन और मनोविज्ञान अथवा चेतना को सम्पुट करने वाले अन्य शास्त्रों से जोड़ा जाता था किंतु आज इसे समस्त ललित कलाओं से सम्बद्ध माना जाता है। सौन्दर्य वस्तुतः प्रकृति और कला-निबद्ध है। प्रकृति स्वयंभू है और कला मानव-सृजित कृति। कलाए जिसमें संवेदना और सहजानुभूति का प्राधान्य रहता हैए सौन्दर्य को प्राप्त कर आनंदानुभूति में समथ होता है। कलागत सौन्दर्य की इन्हीं विशेषताओं के आधार पर साहित्य का सौन्दर्यशास्त्रीय अध्ययन किया जाता है। यह तथ्य सही है कि भारतीय वांग्मय में सौन्दर्य' की और पाश्चात्य जगत् में ' सौन्दर्यशास्त्र' की विशद् व्याख्या हुई है। प्राचीन भारतीय वांग्मय में जीवन और प्रकृति को एक सार्वभौम दृष्टि से समझने के क्रम में सुन्दर' की व्यापक विवेचना हुई है। वेद और उपनिषद् इसके प्रमाण हैं। वेदों में सौन्दर्य के ऐन्द्रिय और आत्मिक-दोनों रूपों की व्यंजना हुई है तो उपनिषद् में प्रधानतः आत्मिक सौन्दर्य की। बाद में कालिदास ने मुख्यतः कलात्मक-सौन्दर्य को और भवभूति ने भाव-सौन्दर्य को महत्त्व प्रदान कर इस क्षेत्र को और अधिक व्यापक बनाया। सौन्दर्य का यही भाव हिंदी कवियों में विविध रूपों में दिखलाई पड़ता है।

विषय सूची

1.भूमिका 2. सौन्दर्य शास्त्र: अर्थ, अवधारणा एवं स्वरूप। 3. हिन्दी गीतिकाव्य: स्वरूप विवेचन एवं परंपरा । 4. सठोत्तरी हिन्दी गीतिकाव्य: रचना-परिप्रेक्ष्य एवं बदलता सोनदारया बोध। 5. सठोत्तरी हिन्दी गीतिकाव्य: चेतनागत सौन्दर्य । 6. सठोत्तरी हिन्दी गीतिकाव्य: भाषा एवं शिल्पगत सौन्दर्य। उपसंहार, सहायक ग्रंथ सूची।

12. पुष्पिता कुमार
बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की पत्रिकाओं में स्त्री (1990 से 1947 के मध्य प्रकाशित प्रमुख हिन्दी पत्रिकाओं के साहित्येतर लेखन के विशेष में ।
निर्देशक: डॉ . निरंजन कुमार
Th 27044

सारांश

बीसवीं सदी की हिन्दी पत्रिकाओं को जहां विरासत में महिला उद्धार और जागरण कि प्रेरणा मिली वहीं एक संकरमनशील वर्तमान भी मिला। परिस्थितियों तीर्व गति से परिवर्तिती हो रही थी। स्वतन्त्रता अनोलन चरम पर था। मुख्यदाहर कि पत्र- पत्रिकाएँ अब जन जागरण के अभियान से राष्ट्र निर्माण कि और मूड चुकी थीं। लगातार बढ़ते संगर्ष और अंग्रेजों कि क्रूर दमन नीति ने पत्र पत्रिकानों को और अधिक सशक्त और मुखर बना दिया था। बीसवी सदी कि पत्रिकाएँ दोगुने जोश और जुनून के साथ आज़ादी कि लड़ाई में अपना

योगदान दे रही थीं साथ ही स्वतन्त्रता आंदोलन के अगुवा ये बहुत जल्दी समझ चुके थे कि ये लड़ाई इस आधी आबादी अतार्थ स्त्रीयों के बिना संभव नहीं है स्वतन्त्रता आंदोलन से उन्हे पूर्णरूपेण तभी जोड़ा जा सकता था जब वे स्वयं स्वतंत्र हों स्वयं तमाम सामाजिक बेड़ियों से मुक्त हों। अतः पहला आंदोलन तो स्त्रीयों के बीच ही होना था। फलस्वरूप समाज के लगभग सभी तबकों कि स्त्रीयों पर इसका व्यापक प्रभाव पड़ा। इससे स्त्री मानस को जहा संघर्षशीलता और जिजीविका जैसी प्रेरणा मिली वहीं उद्देश्य के प्रति समर्पण और कठिनाइयों का सामना करने जैसे संस्कार भी मिले। हिन्दी भाषा भाषी क्षेत्र कि महिला पत्रकारिता के संदर्भ में निश्चयपूर्वक या कहा जा सकता है कि बीसवी सदी के पूर्वार्ध में स्त्री केन्द्रित पत्रिकारिता अपने वास्तविक उद्देश्य में सफल दिखती है। प्रस्तुत शोध प्रबंध ' बीसवी सदी के पूर्वार्ध कि पत्रिकानों में स्त्री (1900 से 1947 के मध्य प्रकाशित प्रमुख हिन्दी पत्रिकाओं के साहित्येत्तर लेखन के विशेष संदर्भ में) में ये दिखने का प्रयास किया गया है कि सदी का पूर्वार्ध स्त्री प्रश्नों के संदर्भ में महत्वपूर्ण है क्यूकी पहली बार बड़ी संख्या में हिन्दी पत्रकारिता में स्त्री लेखिकाओं का आगमन हुआ। इन्होंने पत्रिकाओं में न सिर्फ लिखना शुरू किया अपितु स्वयं सम्पादन का भर भी संभाला फलस्वरूप स्त्री केन्द्रित प्रश्नों एवं अधिकारों के स्वर में एक परिवर्तन देखने को मिला।

विषय सूची

1.बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध में स्त्री 2. बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की हिन्दी पत्रिकाएँ 3. बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की हिन्दी पत्रिकाओं के स्त्री सरोकार 4. तत्कालीन हिन्दी पत्रिकाओं में स्त्री अधिकार, प्रसन और चुनौतियाँ 5. बीसवीं सदी के पूर्वार्द्ध की हिन्दी पत्रिकाओं में स्त्री : दशा ओ दिशा , उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

13. पिंकी कुमारी

हिन्दी के प्रमुख निर्गुण संत कवियों के काव्य में आस्था और तर्क का द्वंद ।

निर्देशका : प्रो. रजनी बाला अनुरागी

<u>Th 26701</u>

सारांश

हिंदी का निर्गुण संत काव्य जीवन के इस वास्तविक सुख की तलाश को पूरा करता है। वह ‘आस्था’ के रूप में जीवन को संजीवनी प्रदान करता है और व्यक्ति को जीवन के अंधेरों से लड़ने की शक्ति देता है। गप आज ‘आस्था’ के नाम पर धार्मिक हिंसा हर दूसरे दिन अखबारों की सुर्खियां हैं। ‘आस्था का अधिकार’ धार्मिक खेमों में बँट कर हिंसात्मक रूप ले लेता है। वस्तु स्थिति को अपने-अपने पक्ष में करने के लिए ‘तर्क’ गढ़ लिये जाते हैं। ‘आस्था’ की लड़ाई और तर्क का अवसरवादी प्रयोग धर्म को आतंक के रूप में फैलाने लगता है। जिसमें मानवीय संवेदनाएँ दम तोड़ देती हैं। इसलिए यह जरूरी हो जाता है कि ‘आस्था’ का सही रूप समझा जाए। निर्गुण संत काव्य ‘आस्था’ के सही रूप का प्रस्तुतकर्ता है। वह बताता है कि आस्था विश्वास-ज्योति है। वह सद्भाव की प्रेरक है। उसे धर्म-सम्प्रदाय से जोड़ना भारी भ्रम है। धर्म-सम्प्रदाय के खेमों में आस्था को बांटना उसे विऔत करना है। यह विऔति आज के समय का कटु सत्य है, जो मानवता के लिए गंभीर चुनौती बनी हुई है। भौतिकता वर्तमान जीवन की मुख्य पहचान है। भौतिक सम्पन्नता की लालसा में व्यक्ति जीवन भर दौड़ता है, बहुत कुछ हासिल भी करता है। फिर भी संतुष्ट नहीं होता। वह खुद में अधूरा-सा महसूस करता है। अधूरेपन का अहसास व्यक्ति को जीत कर भी हरा देता है। भौतिक उन्नति करते हुए व्यक्ति के जीवन में अपूर्णता का यह बोध वस्तुतः उस ओर संकेत करता है जिसे व्यक्ति बाहरी चकाचौंध में भूला रहता है। वह है उसका ‘आत्मिक पक्ष’। भौतिक सम्पन्नता व्यक्ति की आत्मिक भूख शांत नहीं कर सकती, उसके लिए ‘आस्था’ चाहिए। ‘आस्था’ व्यक्ति के आत्म पक्ष को उन्नत करती है, वह व्यक्ति की आत्मिक भूख को शांत करते हुए उसे पोषित करती है। आज के वर्चुअल युग में सब कुछ त्मंस की बजाए त्ममस है, जो

सच का भ्रम पैदा करता है। सोशल मीडिया की बहुत सी उपलब्धियों के पीछे कुछ खामियाँ भी है जिसने मानव-जीवन को किसी न किसी रूप में प्रभावित किया है। आज के समय में व्यक्ति के चारों तरफ ऐसी वर्चुअल दुनिया खड़ी कर दी जाती है, जिसमें जो सच दिखाया जाता है उसमें 'सच' जैसा कुछ है ही नहीं। सब कुछ आभासी है। इंटरनेट, फेसबुक, इन्स्टाग्राम, व्हाट्सप जैसे वबपंस ब्वददमबजपअपजल के साधनों ने मानवीय सम्बंधों में अस्थिरता पैदा कर दी है। एक अजीब तरह की फिसलन है, जहाँ कुछ भी टिकाऊ नहीं है। हजारों थ्वससवूमते है, फेसबुक फ्रैंड्स है पर वास्तव में कोई नहीं है। मानवीय संबंधों में धुंधलका है। व्यक्ति भीड़ में भी अकेला है। सुख-सुविधाओं से भरी जिंदगी में भी वह खुश नहीं है। विलासता से भरी जिंदगी में व्यक्ति भीतर से 'रीता' है। उसके भीतर का 'खालीपन' उसे मानसिक अवसाद में धकेल देता है। ऐसे में आस्था व्यक्ति के लिए औषधि का काम करती है।

विषय सूची

1.भूमिका 2. आस्था और तर्क: विश्लेषणात्मक परिचय। 3. आस्था और तर्क: मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य 4. निर्गुण संत काव्य और हिन्दी के प्रमुख संत कवि। 5. निर्गुण संत कवियों का रचना कर्म। 6. निर्गुण संत काव्य में आस्था और तर्क का द्वंद। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

14. प्रमिला

लक्ष्मीनारायण लाल के नाटकों में मिथक की रचनात्मक भूमिका।

निर्देशक: डा. रसाल सिंह

Th 26694

सारांश

मिथक आदि मानव द्वारा सृष्टि के रहस्यमय तत्त्वों को समझने के प्रयास में रची गई ऐसी कथाएँ हैं जो मानव समाज के निरन्तर विकास के साथ-साथ विकसित होकर आज भी मानव-जीवन और उसके परिवेश के सत्य को अभिव्यक्ति प्रदान करने में सक्षम हैं। मिथक मानव की सामूहिक आस्थाओंए विश्वासों का संयोजन है जो समय के प्रवाह में रूप ग्रहण करता हुआ मानव समाज की चेतना को प्रभावित करता है। भावात्मक दृष्टि से लोकमानस में मिथक के प्रति अटूट विश्वास होता है। साहित्य का सम्बन्ध् भी मानव-जीवन से है अतः साहित्य में मिथक परम्परा का समावेश अवश्य रहता है। मानव के विश्वासों की अनन्त कथाएँ मिथकीय साहित्य में प्रकट होती हैं। नाटक साहित्य की महत्त्वपूर्ण विध है जो अपनी प्रकृति में सर्वाधिक संश्लिष्ट विध है। नाटक जनमानस की चेतना में सतत् प्रवाहमान रहता है। यही वह बिन्दु है जिससे नाट्य-जगत् आधर ग्रहण करता है। अन्य गद्य विधओं की तुलना में सजीव होने के कारण जीवन को रंगमंच पर उतारने की क्षमता नाटक में होती है। अपनी इस सम्प्रेषणीयता के कारण साहित्य में नाटक को विशिष्ट माना जाता है। जनजीवन की सूक्ष्मतम ध्ड़कन और मानसिकता के उतार-चढ़ाव का जितना सही ृग्रापफ' नाटक तैयार कर सकता हैए उतना साहित्य की अन्य विध द्वारा सम्भव नहीं। हिन्दी नाटक में ृमिथक' का प्रयोग नाट्य-लेखन की आरम्भिक अवस्था से ही उपलब्ध् होता है। समय के साथ-साथ मिथक में प्रस्तुत कथा प्रसंग घटना चरित्रा एवं जीवन-दर्शन युग विशेष' से जुड़कर अतीत के आवरण में आधुनिक युग की परिस्थितियों समस्याओं के साथ-साथं मानव की संवेदनाओं द्वन्द्व संघर्ष व विसंगतियों को भी अभिव्यक्ति प्रदान करते हैं। स्वतंत्राता प्राप्ति के पश्चात् हिन्दी नाटककारों का इतिहास पुराण प्रसंगों व लोक कथाओं को देखने का नजरिया बदला जिसकी पृष्ठभूमि में स्वतन्त्रा भारत का परिवेश था। जिसमें सामान्य-जन का मोहभंग हुआ था। राजनीतिक ध्रातल पर सत्ता-हस्तांतरण सत्ता-नियन्त्राण की चालें भ्रष्टाचार मूल्यहीनता परिवेश की प्रतिकूलता में असहाय मानव की आस्थाएँ खण्डित हुई और उसने प्रत्येक स्थिति विचार तथा भावना के आगे प्रश्नचिन्ह लगा दिया। इसी के पफलस्वरूप इस समय के नाटककारों ने मिथक का उपयोग करते समय उनके ऐतिहासिक पौराणिक आधर को महत्त्व न देकर कथ्य के प्रति अपनी निष्ठा का निर्वहन किया। परम्परा की भाँति इतिहास-पुराण को साध्य के रूप में नहीं बल्कि साध्न के रूप में ग्रहण किया। मिथक का सर्जनात्मक उपयोग कर आधुनिक संवेदना को अभिव्यक्ति देकर मूल्यान्वेषण में नई परम्परा का आरम्भ

किया।लक्ष्मीनारायण लाल के नाट्य-साहित्य का अध्ययन करने के पश्चात् यह बात पुष्ट होती है कि इन्होंने सर्वाध्कि मिथक-आधरित नाट्य-रचनाओं का प्रणयन किया है। मिथक और यथार्थ की पारस्परिकता में युग-यथार्थ की गहरी समझ के कारण लाल के नाटकों की कथा पात्रा परिवेश एवम् स्थितियाँ पुरा प्रसंगों से होने पर भी समकालीन सन्दर्भों युग-यथार्थ को रेखांकित करने वाली हैं। अपनी दृश्यगत जीवन्तता के कारण आधुनिक भाव-संवेदन को उद्घाटित करने में सक्षम दिखाई पड़ती है। वे आधुनिकता के रूपायन के लिए मिथक को अत्यन्त उपयुक्त मानते हैं। उनका मानना है-विशेषकर नाटक में जब कोई मिथक आ जाता है तो मिथक की शक्ति इतनी बढ़ती है कि उससे सहज ही इतिहास वर्तमान तथा भविष्य जैसे प्रकाशित हो उठता है। मिथक पुराबिम्ब बनकर त्रिआयामीय हो उठता है। अपने मिथकीय चिन्तन के अनुरूप मिथकों की शक्ति को भली-भाँति जानकर उन्होंने पुराणए महाभारत रामायण आदि से कथास्रोत ग्रहण कर सामयिक जीवन-सन्दर्भों को रूपायित किया। मिथक की प्रासंगिकता में अपने समय के यथार्थ को व्यक्त करने वाले प्रमुख नाटक हैं-सूर्यमुख कलंकी मिस्टर अभिमन्यु नरसिंह कथा एक सत्य हरिश्चन्द्र सगुन पंछी सूखा-सरोवर राम की लड़ाई यक्ष-प्रश्न गुरु और बलराम की तीर्थयात्रा। नाटककार लक्ष्मीनारायण लाल समसामयिक परिवेश और युगबोध् के प्रति अत्याध्कि सजग हैं। वस्तुतः समकालीन समाज का जीवन्त साक्षात्कार ही लाल के नाटकों की संवेदना का मूलाधर है। स्वातंत्रयोत्तर नाट्य-साहित्य में लक्ष्मीनारायण लाल के नाटक मिथक प्रयोग की विविध् भंगिमाओं को लिए हुए हैं। मिथक का आश्रय लेकर सामयिक युग की मानवीय संवेदना सामान्य जन की पीड़ा और व्यापक जीवन-सत्य के सन्दर्भ में नाटकीय घटना-विन्यास के साथ उन्होंने जीवन स्थितियों का दिग्दर्शन कराया है। पौराणिक संदर्भ उनकी नाट्य-रचनाओं में पूरी जीवन्तता से प्रतिध्वनित हुए हैं। मिथकीय पात्रों एवं घटनाओं का आश्रय लेकर संवेदनशील दृष्टिकोण के साथ लाल ने जीवन की अनुभूत समस्याओं को ही चित्रित किया है। अपने कथ्य के अनुकूल उद्देश्य प्राप्त करने की दृष्टि से उन्होंने पौराणिक ऐतिहासिक लोक प्रचलित विश्वास के कथा-प्रसंगों का चयन करके आधुनिक और सामयिक राजनीतिक सामाजिकए धर्मिक और सांस्कृतिक स्थितियों से उत्पन्न मानसिकता और संवेदना को रचनात्मक स्तर पर समाज और लोकहित की दृष्टि से रूपायित किया है।

विषय सूची

1. प्राकथन 2. मिथक-उत्पत्ति, अर्थ, चिंतन और प्रयोग। 3. हिन्दी नाट्य साहित्य में मिथक । 4. लक्ष्मीनारायण: बहुआयामी व्यक्तित्व और विकासमान कृतित्व। 5. लक्ष्मीनारायण लाल की नाट्य-संवेदना में मिथक की भूमिका। 6. लक्ष्मीनारायण लाल नाट्य-शिल्प में मिथक की भूमिका। उपसंहार, तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

15. भारती

हिन्दी दलित कथा साहित्य में ग्रामीण और नगरिय अनुभवों का तुलनात्मक अध्ययन ।

निर्देशक : प्रो. नामदेव

Th 26702

सारांश

भारत की सामाजिक व्यवस्था बहुत प्राचीन है। भारतीय समाज को सुव्यवस्थित बनाए रखने के उद्देश्य से वर्णव्यवस्था की रचना की गई। भारत में प्रमुख रूप से आठ धार्मिक समुदाय है। जिनमें हिंदू बहुसंख्यक में है। ऐसा माना जा सकता है कि अन्य धर्मों की रचना में भारत आक्रमणकारियों के आगमन, ब्रिटिश शासन तथा हिंदू धर्म से विमुक्ति के उद्देश्य से हुई है। अतः इन धामिर्क समुदायो ं के कारण कई सारी जातीय जटिलताएँ उत्पन्न हुई। जहाँ कर्म आधारित वर्ण व्यवस्था का रूप जन्म ले लिया और उसे पोषित करने मे मनु ने प्रमुख भूमिका का निर्वाह किया। भारत की सामाजिक संरचना बहुत पुरानी है। इस सामाजिक संरचना के चार आधारभूत वर्ण है- ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र। इन सभी वर्णों की सरं चना कर्म आधारित थी। अर्थात् ब्राह्मण का कार्य विद्या अध्ययन, नीति-निर्धारण तथा धार्मिक अनुष्ठानों से संबंधित कार्य करना था। क्षत्रिय का

कार्य शासन-प्रशासन का संचालन करना और वैश्य का कार्य व्यापर सुनिश्चित किया गया था। जबकि शूद्र का अर्थ उपरोक्त तीनों वर्णों की सेवा कार्य करता था। सेवा कार्य के साथ-साथ शूद्रों को निऔष्ट कार्य भी सौंपे गए थे। यह समाज द्वारा सुव्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य से रचित की गई थी किंतु समय के बदलाव आरै विभिन्न शक्तियो ं के आगमन से ऊपरी तीन वर्णों पर कुछ खास असर दिखाई नहीं पड़ा बल्कि इनकी स्थिति और अधिक मजबूत होती चली गई तथा ये सभी स्तरों पर सशक्त होते गए किंतु शूद्र जो बाद में चलकर दलित कहलाए की स्थिति दयनीय होती चली गई। जाति-व्यवस्था की जंजीरे इतनी अधिक मजबूत है कि हमारा संविधान तथा नियम-कानून भी इन्हें तोड़ने में असफल रहा है। इन जंजीरो को और भी अधिक मजबूत करने में हिन्दू ग्रन्थों की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इन ग्रन्थों का निर्माण ही दलितों और स्त्रियों को गुलाम बनाए रखने के लिए हुआ है। हिंदी दलित कथा साहित्य का विकास बहुत अधिक पुराना नहीं है। दलित साहित्य का आरंभ आधुनिक समाज में हुआ है जिसकी पृष्ठभूमि के मूल में केवल और केवल दलित ही आता है जिन्हें पूर्व में शूद्र कहा गया था। हिन्दी कथा साहित्य प्रारंभ से ही दलितों की स्थितियों को सुधारने के लिए प्रयत्नशील रहा है किन्तु दलितों के यथार्थ को बिना किसी लांग-लपेट के प्रस्तुत करने में वह असफल ही हुआ है। कबीर, रैदास, रहीम आदि ने दलितों की वाणी को समाज तक पहुचांया तो है किन्तु यह भेद मिट न पाया। दलित शब्द की व्याख्या विभिन्न दलित एवं गैर दलित साहित्यकारों द्वारा की गई। कई दलित साहित्यकारों का ऐसा मानना है कि एक गैर-दलित कभी दलित जीवन की सच्चाइयों, उसकी पीड़ा को उसी संवेदना के साथ नहीं प्रस्तुत कर सकता जिस प्रकार कोई दलित साहित्यकार कर सकता है। कई मायनो में यह सच भी है। क्योंकि दलित साहित्यकार द्वारा लिखा गया साहित्य, उसका भोगा हुआ यथार्थ होता है। कई साहित्यकारों द्वारा गैर शूद्र समाज से जुड़े व्यक्ति को भी दलित की श्रेणी में रखा किंतु दलित शब्द की अवधारणा पर विचार करते हुए यह स्पष्ट किया गया है दलित के अंतर्गत अस्पृश्य व अछूत जातियों को ही सम्मिलित किया गया है जिन्हें वर्तमान में अनुसूचित वर्ण प्रदान किया गया है। यही दलित जातियां अपनी अस्मिता की खोज करती दिखाई देती है। उक्त शोध से अंतर्गत हिंदी दलित कथा साहित्य ग्रामीण एवं नगरीय का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है।

विषय सूची

1.भूमिका 2. दलित समाज का अतीत और वर्तमान। 3. हिन्दी दलित साहित्य की अवधारणा। 4. हिन्दी दलित कथा साहित्य में चित्रित ग्रामीण समाज। 5. हिन्दी दलित कथा साहित्य में चित्रित नगरीय समाज। 6. हिन्दी दलित कथा साहित्य में चित्रित ग्रामीण एवं नगरीय समाज के सामाजिक स्तरों की तुलना। 7. हिन्दी दलित कथा साहित्य में चित्रित ग्रामीण एवं नगरीय पात्रों में चेतना के विविध आयाम। 8। हिन्दी दलित कथा साहित्य का शिल्प। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

16. मिश्रा (आशू)
नई कविता के मूल्यांकन की समस्या और विजयदेव नारायण साही की आलोचना।
निर्देशक : प्रो. चन्द्रशेखर
<u>Th 26685</u>

सारांश

विजयदेव नारायण साही की आलोचना ने हिंदी की स्वातंत्र्योत्तर आलोचना को अनेक स्तरों पर प्रभावित किया है। प्रस्तुत शोध कार्य के अंतर्गत उनकी आलोचना दृष्टि को नयी कविता एवं नई कविता आंदोलन के परिपेक्ष्य में समझने का प्रयास किया गया है। साही की आलोचना के विविध पक्षों पर विचार करने के साथ ही यह शोध कार्य उनके राजनीतिक आंदोलकारी व्यक्तित्व को समझने का प्रयत्न भी करता है। साही की आलोचना जहाँ एक ओर

नयी। कविता आंदोलन को समझने का प्रयास करती है तो वहीं दूसरी ओर साही मध्यकालीन साहित्य का मूल्यांकन भी करते हैं। उन्होंने इसी आधार पर हिंदुस्तान की अपनी चिंतन धारा की व्याख्या की है। साही के लिए आलोचना महज शास्त्रीय प्रतिमानों से निर्मित कसौटी मात्र नहीं है बल्कि वे आलोचना कर्म के माध्यम से अपने समाज की विविध चिंताओं एवं अनेक सवालों के हल तलाशने की कोशिश करते दिखाई देते हैं। इस शोध कार्य में संतुलन के उस बिंदु को तलाशने का प्रयास किया गया है। जिस बिंदु पर साही अपने राजनीतिक जीवन एवं आलोचक व्यक्तित्व के संतुलन को साधने के प्रयास कर रहे थे। आजादी के बाद की हिंदी आलोचना का निर्माण अनेक प्रकार की वैचारिक टकराहटों के बीच हुआ। मार्क्सवादी एवं गैर मार्क्सवादी आलोचना के बीच की ये टकराहट हिंदी साहित्य के मूल्यांकन को बहुत दूर तक प्रभावित करती है। हिंदी आलोचना की इस टकराहट को समझे बिना साही की आलोचना दृष्टि को समझना अत्यंत कठिन है। उनकी आलोचना को इसी वैचारिक परिप्रेक्ष्य को दृष्टि में रखकर देखने की चेष्टा की गयी है। सम्भवतः यह उस युग की वैचारिक टकराहट का ही परिणाम था कि साही ने आलोचना के लिए रचनाकार की विचारधारा अथवा कृति के समाजशास्त्रीय अध्ययन की अपेक्षा कला एवं सौंदर्य के प्रतिमानों का समर्थन किया। उनका मानना था की साहित्य कलात्मक सौंदर्य का सर्वोच्च उदाहरण है। अतः उसका मूल्यांकन भी कलात्मक दृष्टि से ही किया जाना चाहिए। इन मकंदण्डों से जो निष्कर्ष निकलते हों मूल्यांकन की शक्ति एवं सीमा वे निष्कर्ष ही होंगे न कि ऐतिहासिक दस्तावेजों के आधार पर किसी भी कृति के सम्बंध में निकले गये निष्कर्ष। कहना न होगा कि ये स्थापनाएं नयी कविता आंदोलन के प्रवर्तकों की भी थी। वे मानवीय अनुभुति को बेहद निजी मानते थे और यह चाहते थे की इसका विश्लेषण वैयक्तिकता के आधार पर ही किया जाए न की सामाजिक संदर्भ में। साही की आलोचना का विश्लेषण करते हुए बराबर यह प्रतीत होता है कि वे अपनी चिन्तन शीलता का विकास उक्त प्रश्नों से जूझते टकराते हुए ही कर रहे थे। यही कारण है कि साही के आलोचना कर्म के मूल्यांकन की समस्या नयी कविता के मूल्यांकन की समस्या भी है।

विषय सूची

1.भूमिका 2. नई कविता एवं नई कविता के मूल्यांकन का प्रश्न। 3. विजयदेव नारायण साही की आलोचना कर्म के निर्माण का आधार। 4. विजयदेव नारायण साही का परंपरा बोध और मालिक मोहम्मद जायसी का मूल्यांकन। 5. विजयदेव नारायण साही की आलोचना एवं साहित्यक पक्षधरता का सवाल। 6. विजयदेव नारायण साही की आलोचना के अन्य पक्ष एवं आलोचनकों की नज़र में उनकी आलोचना। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

17. मिश्रा (नितिन)
असगर वजाहत के कथा साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक संस्कृति ।
निर्देशक: प्रोफ. कुसुमलता मालिक
Th 27043

सारांश

सामासिक, संस्कृति दो या दो से अधिक संस्कृतियों का मिलन मात्र नहीं है सामासिक का कार्य है, मिलकर एक हो जाने वाली। हमारा देश 'भारतवर्ष' अनेक संस्कृतियों की मिलन भूमि रहा है। 'आर्य-अनार्य' ; हिन्दू-मुस्लिम' ; 'आंग्ल-प्राच्य' अनेक संस्कृतियों ने एक दूसरे को प्रभावित तथा अनुप्राणित करती है। समकालीन हिन्दी कथा साहित्य में असगर वजहत का नाम न केवल उल्लेखनीय कथाकारों में शुमार होता है बल्कि देश की समकालीन परिस्थितियों एवं स्थितियों की स्पष्ट और मुखर अभिव्यक्ति उनके कथा लेखन द्वारा होता है। असगर वजहत के साहित्य में सामासिक संस्कृति के गठजोड़, द्वंद, तनाव, विडम्बना और राजनैतिक चल छल कपात आदि का विवरण कार्य कारण शृंखला के साथ प्रस्तुत हुआ है। असगर वजहत एक सजग और अपने समय देशकाल के साथ जीवंतता के साथ जुड़े रहने वाले लेखक है। असगर वजहत का लिखा गया समूचा साहित्य अपने समय की मूल चिंताओं और प्रश्नों के साथ न केवल जुड़ता है बल्कि उससे जुड़े सामाजिक-सांस्कृतिक आयामों की उन परतों को भी उद्घाटित करता है जिनकी और हमारा ध्यान हमारे पुरावग्रहों के कारण स्पष्ट नहीं हो पता। प्रस्तुत शोध-प्रबंध ''असगर वजहत के कथा साहित्य में अभिव्यक्त सामासिक संस्कृति'' में असगर वजहत के पुरावर्ती और समवर्ती कटहकारों के मार्फत सामासिक संस्कृति की वैचारिकी की रचनात्मक कौशल को रेखांकित करने का प्रयास किया गया है। प्रस्तुत शोध-प्रबंध को

पाँच अध्यायों में वर्गीकृत किया है। असगर वजहत उन साहित्यकारों में से है जिन्होंने समाज के हाशिये पर पड़े लोगो को साहित्यिक अभिव्यक्ति प्रदान की। असगर वजहत समाज में आए बदलावों को भी अपने कथा साहित्य में दर्ज करने के साथ साथ बदलावों के कारण समाज के आम लोगो पर पड़ते हुए प्रभाव को भी अभिव्यक्त करते है।

विषय सूची

1.. संस्कृति और सामाजिक संस्कृति का आशय एवं महत्व 2. असगर वजाहत के समवर्ती कथा में सामाजिक संस्कृति सामान्य सर्वेक्षण 3. असगर वजाहत के उपन्यासों में सामाजिक संस्कृति 4. असगर वजाहत की कहानियों में सामाजिक संस्कृति 5. कथेतर साहित्य में अभिव्यक्त सामाजिक संस्कृति, उपसंहार और आधार ग्रंथ.

18. मीणा (रेखा)
तेजेन्द्र शर्मा के कथा साहित्य में प्रवासी भारतीय समाज के विविध आयाम।
निर्देशक: प्रो. अनिल राय
Th 26687

सारांश

तेजेन्द्र शर्मा अपनी कहानियों के माध्यम से प्रवासी भारतीय समाज के विविध पक्षों व आयामों का सूक्ष्म विश्लेषण सामाजिकए आर्थिकए सांस्कृतिक और मनोवैज्ञानिक धरातल पर करते है। प्रवासी समाज को लेकर एक आम भारतीय में मिथक प्रचलित है कि प्रवास में जाने वाले व्यक्ति का जीवन बहुत सुखद व आसान हो जाता है। भारतीय युवाओं को भ्रम है कि किसी भी प्रकार एक बार विदेश चले जाओ उसके बाद जीवन में कोई समस्या नहीं है। कोई भारतीय जब विकसित देशों को जाता है तो उसे लगता है अब उसका जीवन धनसहन उच्चवर्ग का हो जाएगा। उन्हें लगता है जो.आराम से भर जाएगा तथा रहन.सम्पदा और ऐशो. कठिनाई या संघर्ष भारत में है वह लंदनए अमेरिकाए कनाडा आदि देशों में तो नहीं होगी। वहाँ विलासितापूर्ण जिन्दगी होगी। जैसा की उनका सुनासुनाया या चलचित्रों में देखा होता है। परन्तु जब तेजेन्द्र . जी की कहानियां पढ़ते हैं तो ये धारणाएँ ध्वंस होती नजर आती हैं हालांकि विकसित देशों में संभावनाएँ और अवसर की भरमार होती हैए परन्तु उसको पाने के लिए व्यसक्ति को अपने आप को सिद्ध करना पड़ता है। विदेशी परिवेश की कसौटी पर खरा उतरना उसके लिए चुनौतीपूर्ण होता है यहाँ कठोर परिश्रम प्रतिभा और ज्ञान की आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त उस परिवेश में अपने आप को ढालना अतिआवश्यक है। विदेशों में जाकर प्रवासी अनेक प्रकार की समस्याओं का सामना करता है। प्रवासी भारतीय समाज प्रवास की कठिनाईयों में भी प्रगति व उन्नति करते हैं और अपने मूल देश को गौरव प्रदान करते है। इस प्रकार तेजेन्द्र शर्मा प्रवासी भारतीय समाज के जीवन के विभिन्न पहलुओं का परिचय अपने कथासाहित्य के माध्यम . से देते हैं। तेजेन्द्र शर्मा ने अपने कथा साहित्य में प्रवासी भारतीय समाज में नास्टेल्जिया और भारत की स्मृति से आगे बढ़कर पश्चिमी और भारतीय मूल्यों की टकराहटए पारिवारिक विघटनए स्त्री विमर्शए यौन स्वतंत्रताए मृत्युबोधए स्त्री पुरुष संबंध की नवीन व्याख्याए विदेशी परिवेश की विद्रुपताएंए विसंगतियाँए भौतिकवादी मनोवृति आदि का चित्रण किया है। तेजेन्द्र शर्मा ने अपनी कहानियों में नया अनुभव संसारए नए संघर्षए नये माहौल और नई सोच की अभिव्यक्ति दी है। तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में नये विषय उनके लंदन प्रवास के पूर्व के भी थे। लंदन जाने के बाद उन्होंने सर्वप्रथम दो कार्य किए पहला भारतीय नास्टेल्जिया से बाहर आने का दूसरा ब्रिटेन की सामाजिकविचार को .सांस्कृतिक बुनावटए जीवन शैली और आचार. समझने की। उक्त दोनों कार्य तेजेन्द्र शर्मा की कहानियों में यथार्थपरकता तथा जीवंतता लाने के लिए अनिवार्य थे।

विषय सूची

1. भूमिका 2. प्रवास: स्वरूप और विश्लेषण। 3. प्रवासी साहित्य: पृष्ठभूमि और परंपरा। 4. तेजेन्द्र शर्मा का कथा संसार 5. तेजेन्द्र शर्मा के कथा-साहित्य में प्रवासी समाज के विविध पक्ष। 6. तेजेन्द्र शर्मा के कथा-साहित्य में प्रवासी भारतीय समाज का विश्लेषण। उपसंहार, परिशिष्ट-साक्षात्कार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

19. मीनाक्षी
महादेवी वर्मा के काव्य आलंबन का स्वरूप।
निर्देशक : प्रो. राज भारद्वाज
Th 26690

सारांश

शोध कार्य में महादेवी जी की दार्शनिक चिंतक के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए तथा उनकी भाव भूमि के स्रोत के विषय में चर्चा करते हुए उन तत्वों का उल्लेख करने का प्रयास किया है जो अनुभूति के रूप में उनके काव्या आलंबन के रूप में उनके काव्य आलंबन के स्तंभ बने । महादेवी जी के काव्यालंबन में सगुण और निर्गुण तत्वों की खोज तथा उनके काव्य में लौकिकता और पर नुभुति के संदर्भ पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है । महादेवी जी का प्रिय साकार नहीं है निराकार है इसी कारण कवित्री अपने निर्गुण ब्रह्म प्रियतम की पूजाअर्चना भी भि-न्न प्रकार से करती हैं वह कहती हैं क्या पूजा अर्चना रे ? उस असीम का सुंदर मंदिर मेरा लघुतम जीवन रे। कवित्री के प्रेम का आलंबन निर्गुण भले ही है किंतु जब कवयित्री उसकी अभिव्यक्ति करती हैं तो उसके लिए भी वे अलौकिक प्रतीकों का ही प्रयोग करती है ।निराकार ब्रह्म अनुभव का विषय है अभिव्यक्ति में आता है तो वह सगुण हो जाता है अपने काव्य के माध्यम से भी यही संदेश दिया है जिस प्रकार एक छोटा सुमन झड़कर भी सारे वातावरण को सुरभित कर देता है, एक लघु दीपक अपने जीवन को संसार का अंधकार नष्ट करने के लिए समर्पित कर देता है उसी प्रकार हमें भी अपना क्षणभंगुर जीवन समाज सेवा में दुखियों की सेवा में समर्पित कर देना चाहिए । स्पष्ट शब्दों में कहती है हंस देता नव इंद्रधनुष की स्मित में घन मिटता मिटता रंग जाता है विश्व राग से । निष्फल दिन ढलता ढलता, कर जाता संसार सुरभिमय । एक सुमन झरता झरता , भर जाता आलोक तिमिर में,लघु दीपक बुझता बुझता । इस प्रकार महादेवी जी के काव्य में आलंबन के स्वरूप को खोजने का प्रयास किया गया है।

विषय सूची

1. प्राकथन2. साहित्य शास्त्र में आलंबन का स्वरूप विवेचन। 3. भारतीय रस सिधान्त और काव्य आलंबन 4. साहित्य शास्त्र में नायकत्व (नेता) की अवधारणा और आलंबन। 5. हिन्दी काव्य में आलंबन का स्वरूप, विकास। 6. हिन्दी साहित्य में आलंबन का निर्गुण और सगुण स्वरूप। 7. छायावादी काव्यानुभूति और आलंबन। 8. महादेवी की काव्यानुभूति की बनावट। 9. महादेवी का काव्यालंबन। उपसंहार और संदर्भ ग्रंथ सूची।

20. यादव (कन्हैया लाल)
शिवदन सिंह चौहान की 'इतिहास दृष्टि'।
निर्देशक: प्रो. सुधा सिंह
Th 27049

सारांश

नित्यानंद तिवारी ने अपने लेख 'साहित्य के इतिहास का नया –ष्टिकोण' में शुक्ल जी के इतिहास से टकराने वाले तीन नाम बताए हैं-पहला हजारी प्रसाद द्विवेदी और दूसरा रामविलास शर्मा और तीसरे नाम के रूप में शिवदान सिंह चौहान का उल्लेख किया है। उन्होंने शिवदान सिंह चौहान के बारे में लिखा है कि वे 'किसी ऐ्ति तहासिक ढाँचे से टकराने के बजाय हड़बड़ी में वे इतिहास से ही टकरा गये।' शिवदान सिंह चौहान के इतिहास लेखन के बारे में यह एकमात्र टिप्पणी नहीं है। उनके बारे में हिन्दी की अकादमिक दुनिया में हमने कई बार सुना है कि 'आए थे इतिहास बनाने स्वयं इतिहास बन गए।' कहने का मतलब यह कि शिवदान जी के इतिहास लेखन के बारे में यह

आम धारणा है। इस धारणा का कारण है शिवदान जी द्वारा हिंदी साहित्य के इतिहास को खड़ी बोली साहित्य के इतिहास तक सीमित करदेना और इसके बाद हुए तीक्ष्ण प्रतिवाद एवं उपेक्षा, जिसके कारण शिवदान जी नेपथ्य में चले गए। हिंदी आलोचना एवं इतिहास की परंपरा नायकोन्मुखी रही है। यह प्रवृत्ति साहित्य का इतिहास लिखते समय एवं साहित्यालोचन व साहित्येतिहास लेखन करने वालो ं की स्वीोति व्याप्ति में भी लक्ष्य की जा सकती है। यही कारण है कि हिंदी के साहित्यकार में आलोचकों की सूची के तौर पर केवल चार लोगों का नाम मूलतः लिया जाता है-आचार्य रामचंद्र शुक्ल, आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदएी रामविलास शर्मा और नामवर सिंह। हिंदी अलोचना की एक दूसरी धारा प्रगति-ीील अलोचना है। प्रगतिशील आलोचना के विकास में जो महत्वपूर्ण प्रारंभिक आलोचक रहे हैं वे हैं शिवदान सिंह चौहान, रामविलास शर्मा, प्रकाश चंद्र गुप्त, अमृतराय और रांगेय राघव आदि लेकिन आज इनमें से सिर्फ एक ही नाम हमारे समक्ष प्रस्तुत होता है, वह है रामविलास शर्मा का। बाकी सभी आलोचकों चिंतकों को पक्ष-विपक्ष के खाने में बाँटकर देखने वाली हिंदी की साहित्यिक दुनिया विपक्ष के तारै पर स्वीकार की आरै नेपथ्य में छोड़ दी। दरअसल यह पक्ष-विपक्ष से बढ़कर नायक खलनायक के खाने में बाँटकर देखने वाले – ष्टिकोण का परिचायक है जो एक नायक के रास्ते में रोड़े की तरह आ रहे थे। नायक ने और नायक के प्रशंसक अकादमिशियन ने रोड़े और पत्थर रूपी इन आलोचक-चिंतकों को नेपथ्य में डाल दिया। नवजागरण के विद्वान वीर भारत तलवार ने नवजागरण के उन नायकों को नायक-खलनायक के रूप में विभाजित कर नवजागरण का अध्ययन प्रस्तुत किया है। हिंदी जाति, हिंदी नवजागरण और हिंदी-उर्दू संबंध के बारे में जो तलवार जी की धारणा है, उससे शिवदान जी के विचार बहुत अलग नहीं है लेकिन तकलीफ देय यह है कि जिन रामविलास जी की अवधारणा की खिलाफत में उन्होनें यह धारणा विकसित की और जिस निष्कर्ष पर पहुँचे उन्हीं रामविलास जी से वैचारिक द्वंद्व लेने वाले और लगभग उन्हीं निष्कर्षों पर पहुँचने वाले शिवदान सिंह चौहान को वह याद तक नहीं करते। कुल मिलाकर शिवदान जी का इतिहास और इतिहास एवं आलोचना संबंधी – ष्टिकोण हिंदी साहित्य के इतिहास का एक भूला हुआ और त्याज्य परिप्रेक्ष्य है। लेकिन ज्ञान-विज्ञान की आज की बहुविध दुनिया एक समग्रतामूलक –ष्टिकोण की माँग करती है और उन उपेक्षितों को भी इतिहास और परंपरा में शामिल करने की माँग करती हैजिन्हें इतिहास ने भुला दिया या नजरअंदाज कर दिया है। इसके साथ ही यह समग्रतामूलक धारणा पक्ष और विपक्ष या नायक खलनायक के खाने में बाँटकर देखने की खिलाफत करती है। वैसे साहित्य की दुनिया में यह विभाजन आरै भी खटकता है। यद्यपि गलत और सही, पक्ष और विपक्ष की अवधारणा से इनकार नहीं किया जा सकता। इस पक्ष-विपक्ष का निर्णय करने के लिए इतिहास का परिप्रेक्ष्य और व्यापक मानववादी, समन्वित और संतुलित –ष्टिकोण का होना आवश्यक है। अतः आज नेपथ्य राग जगाने का समय है। उपेक्षितों को केद्रं ाभिमुखी बनाने का समय है और इतिहास के व्यापक परिप्रेक्ष्य में उस लेखन, नव चिंतन का व्यापक मानवता के –ष्टिकोण से मूल्यांकन करनें का समय है। शिवदान जी पर किया जाने वाला यह शोध कार्य इसी चिंतन की उपज है। शिवदान सिंह चौहान हिंदी साहित्य के इतिहास और आलोचना के महत्वपूर्ण हस्ताक्षर हैं। प्रगतिशील आंदोलन एवं चिंतन के विकास में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका रहीहै। हिंदी में प्रगतिशीलता के –ष्टिकोण से साहित्य को व्याख्यायित-मूल्यांकित करने का प्रथम प्रयास शिवदान जी द्वारा ही किया गया। उन्होनें प्रगति विरोधी प्रवृतियों की पुरजोर खिलाफत की और प्रगतिशील लेखन का पथ-प्रशस्त किया। शिवदान सिंह चौहान पर केंद्रित इस शोध अध्ययन में शोध विषय के पाँच अध्यायों में विभाजित करके उनके लेखन व चिंतन का विवेचन व मूल्यांकन किया गया है।

विषय सूची

1.भूमिका 2. प्रगतिशील आंदोलन और शिवदान सिंह चौहान। 3. साहित्येतिहास लेखन और शिवदान सिंह चौहान की इतिहास दृष्टि। 4. भाषा का प्रश्न और शिवदान सिंह चौहान की इतिहास दृष्टि। 5. समसामयिक आलोचनात्मक विवाद और शिवदान सिंह चौहान की इतिहास दृष्टि। 6. हिन्दी आलोचना में शिवदान सिंह चौहान की इतिहास दृष्टि का अवदान। ,उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

21. यादव (जितेंद्र)
समकालीन हिन्दी उपन्यासों में अभिव्यक्त किसान-जीवन (1980-2015)।
निर्देशका : प्रो. नीलम राठी
Th 26697

सारांश

आज भी भारत की सर्वाधिक जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और वह मुख्य रूप से कृषि कार्यों से जुड़ी हुई है। इसलिए हमारे देश की आर्थिक नीतियाँ गाँव और कृषि को नजरअंदाज करके आगे नहीं बढ़ सकती। किन्तु यह दुर्भाग्य रहा है कि शहर का जितना ध्यान दिया गया उतना ही गाँव को उपेक्षित रखा गया है। शहर को ही उद्योग, रोजगार और विकास का मानक मान लिया गया। जबकि गाँव के किसानों को उनकी हालत पर छोड़ दिया गया। 'जय जवान जय किसान' का नारा सिर्फ हवाओं में गूँजता रहा। इसीलिए देश को रोटी और कपड़ा देने वाले अन्नदाता की स्थिति दिन-प्रतिदिन बिगड़ती चली गई। किसानों को उनकी फटेहाल स्थिति में देखने के हम आदि होते चले गए। किसान शब्द आज के समय का सबसे ज्यादा भयावह शब्द बनता जा रहा है। जिस किसान को कभी अन्नदाता कहकर महिमामंडित किया जाता था आज वह व्यवस्था की भेंट चढ़कर उपेक्षा का शिकार हो गया है। किसान की बदहाली देश की बदहाली है। इस वस्तुस्थिति को समझते हुए भी न समझने का ढोंग करती सरकारें भविष्य की भयावह स्थिति की ओर ले जा रही हैं। देश में नवउदारवादी नीतियों के बाद जहाँ एक तरफ उद्योगपति और पूंजीपति को बेतहाशा फायदा पहुंचाया है, वहीं किसान के हालात बद से बदतर हुए हैं। सूखा,ओला और बाढ़ किसान के जन्मजात शत्रु हैं। किंतु यदि ऐसी स्थिति में सरकारी महकमा मरहम लगाने के बजाय उनको अपनी स्थिति पर छोड़ दे तो इससे बड़ी बिडम्बना क्या हो सकती है। सरकार की नीतियाँ उलटे किसान के गले का फ़ांस बन जाए तो इसे क्या कहा जायेगा! आज भारत अनाज उत्पादन में आत्मनिर्भर बन चुका है। भारत की जनता जहां आधा पेट खाना खाकर सोती थी लेकिन हरित क्रांति के बाद कई गुना उत्पादन बढ़ गया। किसानों ने अपने हाड़ तोड़ मेहनत से लोगों को भरपेट भोजन मुहैया कराया। किन्तु इस क्रम में अनाज उत्पादन जितनी तेजी से बढ़ा उस सापेक्ष में किसान की आमदनी नहीं बढ़ी। किसान की उपज की कीमत को जानबूझकर कमतर आँका जाता रहा और तर्क यह दिया गया कि यदि अनाज का दाम बढ़ जाएगा तो गरीब आदमी को कठिनाई होगी। किन्तु किसान का जीवन अधिक कठिन बनता चला गया। किसान भी एक उपभोक्ता है,उसे भी जरूरत की अन्य समान खरीदना पड़ता है। इस नजरिए से आर्थिक विशेषज्ञों ने विचार नहीं किया। सिर्फ किसान का अनाज सस्ता होना चाहिए भले ही शिक्षा,स्वास्थ्य और कपड़ा,मकान महंगा होता चला जाए। इसी कारण से किसान आमदनी में पिछड़ता चला गया। उसके हिस्से घाटे की खेती ही आती रही और वह कर्ज में डूबता चला गया। विकास और परियोजनाओं के नाम पर उसे जमीन से विस्थापित भी किया गया। भूमि अधिग्रहण का कानून अंग्रेजों ने 1894 ई. में बनाया था। जिसमें जमीन लेते समय किसानों से उनका पक्ष जानने का कोई प्रावधान नहीं था। उसे ही इस्तेमाल करके 2013 तक किसानों की भूमि अधिग्रहित की जाती रही है। उसके कारण किसानों की भूमि मिट्टी के भाव अधिग्रहित करके बड़ी-बड़ी कंपनियों को सौंप दिया जाता रहा है।

विषय सूची

1.प्रस्तावना 2. हिन्दी का किसान उपन्यास: चुनोतियाँ और संभावनाएँ। 3. हिन्दी किसान उपन्यास: एतेहासिक परिप्रेक्ष्य। 4. समकालीन किसान केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों के विभिन्न पक्ष। 5. प्रमुख किसान

आंदोलनो का समकालीन हिन्दी उपन्यासों में स्वर। 6. समकालीन किसान प्रधान उपन्यासों में निहित समयाओं पर आधारित-साक्षात्कार एवं सर्वेक्षण। 7. स्थापनाएँ तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

22. यादव (रवि प्रकाश)
रीतिकालीन दरबारी कवियों की सौन्दर्य-चेतना ।
निर्देशक: प्रो. हरीन्द्र कुमार
Th 26693

सारांश

सौंदर्य जीवन की अत्यन्त व्यापक चेतना है। सांस्औतिक सोपानों का विकास इसी का पफल है। जीवन का विविध् सौंदर्य हमेशा मानव को घेरे रहता है। सौंदर्य की सांद्रतानुभूति जब ललित कलाओं के माध्यम से प्रकट होती है तभी काव्य का उन्मेष होता है यद्यपि मानव अपनी अनुभूति, हाव-भाव, प्रसन्नता, उल्लास को सौंदर्य के द्वारा ही व्यक्त करता है, और कहा भी गया है कि सौंदर्य दर्शन को हृदयंगम करने के लिए अत्यंत आवश्यक है- सौंदर्य की आकांक्षा। यह आकांक्षा ही सौंदर्य का सृजन करती है। रीतिकालीन दरबारी कवियों ने अपने काव्य मे विभिन्न प्रकार की सौन्दर्यानुभूति का अप्रतिम वर्णन किया है जो पाठक को अनायास ही अपनी ओर आकर्षित करती है। हिन्दी साहित्य का रीतिकाव्य आज भी सृजन, अध्ययन और मूल्यांकन की दृष्टि से अपनी प्रासंगिकता बनाये हुए है। काव्यशास्त्रा, मनोविज्ञान, कवि और काव्य के रचना-विधन आदि अनेक दृष्टियों से रीतिकाव्य के मूल्यांकन की एक समृ(परंपरा हिन्दी साहित्य में प्राप्त होती है। रीतिकालीन दरबारी कवियों की सौंदर्य-चेतना संस्औत काव्य, दर्शन, शास्त्रा, पुराण, उपनिषद, समाज के लोक व्यवहार, काव्यशास्त्रा तथा प्राचीन कवियों की परिपाटी को संश्लेषित करते हुए तैयार होती है। रीतिकाव्य में सुन्दर, सौंदर्य और सौंदर्यबोध की अर्थव्यंजनाएँ अपने विकास क्रम में विशेष और पारिभाषिक अर्थ रखती हैं जिसमें शास्त्रा, दर्शन, विज्ञान और साहित्य का उदात्त रूप संश्लिष्ट है। प्रऔति, स्त्राी, प्रेम, व्यवहार, लोक व्यवहार, नीति, उपदेश कथन जैसे विषयों की प्रस्तुति में रीतिकालीन दरबारी कवियों ने अपनी लेखनी को अभूतपूर्व मोड़ दिया है। सौंदर्यशास्त्रा में सौंदर्य और आनंद को एक-दूसरे का पर्याय माना गया है। इन अर्थों में हम कह सकते हैं कि समस्त सृष्टि सौंदर्य का भंडार है और यहाँ जो कुछ भी सराहनीय है व मनुष्य की इंद्रियों को सुख पहुँचाने वाला है, सौंदर्य की सीमा में आब(है। यद्यपि ऐसा माना जाता है कि कोई भी शब्द किसी दूसरे शब्द का पूरी तरह पर्यायवाची नहीं हो सकता क्योंकि अलग-अलग शब्दों की अर्थच्छायाएँ भी भिन्न होती हैं। किंतु पिफर भी, संस्औत और हिन्दी में सौंदर्य के पर्याय के रूप में बहुत-से शब्दों का व्यवहार होता रहा है। रमणीय, माधुर्य, चारुता, सुषमा, शोभा, कांति, मनोहर आदि ऐसे ही शब्द हैं जिनका प्रयोग सौंदर्य के स्थान पर प्राचीनकाल से होता आया है। भारतीय और पाश्चात्य परिप्रेक्ष्य में देखें तो सौंदर्य को लेकर विद्वानों के मध्य मुख्यतः वस्तुगत, भावगत और समन्वयवादी दृष्टिकोण की प्रधनता रही है। सौंदर्य की सत्ता वस्तु में अंतर्निहित मानने वाले चिंतकों ने मत रंग कि सौंदर्य पूरी तरह से वस्तु केंद्रित होता है और सुंदर वस्तु से इतर सौंदर्य जैसी कोई चीज नहीं होती। जो वस्तु सुंदर होती है वह हर व्यक्ति को सुंदर दिखती है और आनंद की उत्पत्ति करती है। वहीं दूसरी ओर, सौंदर्य को भावगत निर्मिती मानने वाले विद्वानों के अनुसार सौंदर्य एक आत्मगत अनुभूति है इसलिए कोई एक ही वस्तु जो किसी एक व्यक्ति को बहुत सुंदर प्रतीत होती है, किसी अन्य के लिए साधरण हो सकती है। इस बात को हम कवि बिहारी के माध्यम से भी समझ सकते हैं जिन्होंने लिखा है- 'समै समै सुंदर सबै, रूप कुरूप न कोय। मन

की रुचि जेती जितै, तित तेती रुचि होय'। अन्यत्रा समन्वयवादी विचारकों का वह समूह है जो सौंदर्य को न तो पूर्णतः वस्तुपरक मानता है और न ही भावपरक, बल्कि वह इन दोनों के समन्वित रूप में सौंदर्य का साक्षात्कार करता है। इनके अनुसार वस्तु और भाव दोनों की उपस्थिति ही सौंदर्य की अनुभूति में आवश्यक भूमिका निभाती है। ऐसे में उपरोक्त दोनों का योग सौंदर्य की उत्पत्ति में सहायक बनता है।

विषय सूची

1.भूमिका 2. सौन्दर्य-चेतना: अभिप्राय एवं स्वरूप। 3. रीतिकालीन दरबारी कवि और उनके काव्य विषय। 4. रीतिकालीन दरबारी कवियों की वस्तुपरक सौन्दर्य-चेतना। 5. रीतिकालीन दरबारी कवियों का भावपरक सौन्दर्य-चेतना। 6. रीतिकालीन दरबारी कवियों की शिल्पपरक सौन्दर्य-चेतना। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

23. यादव (शुभम)
विकास की अवधारणा और हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी समाज ।
निर्देशक: श्यौराज यादव
Th 27050

सारांश

विकास अनवरत चलने वाली प्रक्रिया है। अवधारणा के रूप में इस पर विचार द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शुरू हुआ जब तीसरी दुनिया के देश आजाद हो रहे थे लेकिन इसका मतलब यह नहीं है कि यह कोई आधुनिक परिघटना है और प्राचीन समय में विकास की प्रक्रिया मौजूद नहीं थी। मानव सभ्यता ने अपने उदय से लेकर आज तक का सफर विकास की प्रक्रिया के तहत ही तय किया है। प्राचीन काल के चिंतकों के केन्द्र में बेहतर समाज की परिकल्पना थी। प्लेटो, अरस्तू का चिंतन हो या फिर इतावली नवजागरण, उनके लक्ष्य भी बेहतर समाज निर्माण के थे। आज भी विकास के द्वारा बेहतर समाज की परिकल्पना जारी है। अतीत से लेकर आज तक मानव सभ्यता कई ऐतिहासिक चरणों से गुजर चुकी है। आग का आविष्कार, औषि की खोज, पहियों का निर्माण, समुद्री मार्गों की खोज और औद्योगिक क्रांति मानव सभ्यता के विकास चरण की कुछ ऐतिहासिक घटनाएँ हैं। समुद्री मार्गों की खोज और उसके पश्चात हुई औद्योगिक क्रांति ने पूरी दुनिया का नक्शा बदल दि औद्योगिक क्रांति के कारण उत्पादन में वृद्धि हुई, जिसके चलते बाजारों की जरूरत महसूस की जाने लगी। अन्य देशों में मुक्त रूप से व्यापार नहीं हो सकता था क्योंकि वहाँ के अपने व्यापारिक नियम थे इसलिए मुक्त व्यापार और अधिकाधिक मुनाफे के लिये उपनिवेशों का महत्व बढ़ा और सारी दुनिया में यूरोप के साम्राज्य फैले। औद्योगिक क्रांति में ही साम्राज्यवाद-उपनिवेशवाद के स्रोत निहित थे। बढ़ती औद्योगिक प्रतिस्पर्धा ने उपनिवेशों के महत्व को बढ़ा दिया। बाजार की प्रतिस्पर्धा समाप्त हो जाने के कारण उपनिवेश दिनों दिन कंगाल होते चले गये और उनका विकास अवरूद्ध हो गया। उपनिवेशों में साम्राज्यवादी देशों ने अपने हितों के विस्तार के लिए सीमित मात्रा में मशीनीकरण किया, ताकि पूँजीवादी गतिविधियों को बढ़ावा मिल सके। इन्हीं गतिविधियों के चलते अनजाने ही सही, औपनिवेशिक देश आधुनिकीकरण का शिकार हो गये। उपनिवेशों में आधुनिकीकरण करने की एक वजह यह भी थी कि उत्पादन के लिए कच्चे मालों की जरूरत थी और साम्राज्यवादी देशों में श्रम महँगा हो रहा था। ऐसे में उन्हें उपनिवेशों में सस्ते मूल्यों पर श्रम और कच्चा माल दोनों प्राप्त हो रहे थे व लागत पूँजी का मुनाफा बरकरार

था। इसी औद्योगिक प्रतिस्पर्धा, आर्थिक विकास और मुनाफाखोरी की अंतर्राष्ट्रीय प्रतियोगिता ने दुनिया को विश्वयुद्ध के मुहाने पर खड़ा कर दिया। प्रथम विश्वयुद्ध के बीस वर्ष बाद पुनः हुए द्वितीय विश्वयुद्ध ने इस आधुनिकता पर सवाल खड़े किये हैं। मशीने जो मानव की सहायक थी उसके आगे वह असहाय हो गया है। आज आदिवासी समाज के विकास और उनके हितों की नीति बनाने की बागडोर बाहरी लोगों के हाथों में हैं जो आदिवासी परंपरा और संस्औति को नीची व तिरस्कार की नजरों से देखते हैं। ऐसे में अगर आदिवासी समाज का विकास करना है तो नीति निर्माण में उनकी भागीदारी सुनिश्चित की जाए।

विषय सूची

1. भूमिका: विकास की अवधारणा और आदिवासी समाज 2. आदिवासी: इतिहास स्वरूप और सामाजिक सिथती 3. हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विस्थापना 4. हिन्दी उपन्यास और आदिवासी आंदोलन 5. हिन्दी उपन्यासों में पर्यावरनीय विमर्श और आदिवासी समाज,उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

24. यादव (सौरभ कुमार)
उपन्यासकाला और सिद्धांत के बदलते आयाम और समकालीन हिन्दी उपन्यास ।
निर्देशक: प्रो. अनिल राय
Th 26683

सारांश

उपन्यास विधा का जन्म पश्चिमी देशों में मध्ययुगीन जड़ता जिसे अंधकार युग के नाम से अभिहित किया गया के ध्वसावशेष पर हुआ। प्रबोधनकालीन चिंतन के फलस्वरूप मध्ययुगीन बर्बरता और धर्माधता का विरोध शुरू हुआ। चर्च की प्रभुसत्ता को चुनौती दी गयी और ईश्वर की जगह मनुष्य केन्द्रित चिंतन प्रारम्भ हुआ। धर्म का स्थान ज्ञान-विज्ञान ने लिया तो आस्था की जगह तर्क केंद्र में आया। इसी के परिणामस्वरूप पश्चिमी देशों में न सिर्फ वैचारिक रूप से वरन भौतिक रूप से भी नए युग का सूत्रपात हुआ। मशीनीकरण ने औद्योगिकरण को बढ़ावा दिया और इस औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप एक तरफ कच्चे माल और निर्मित उत्पाद के लिए नए बाज़ारों की खोज के परिणामस्वरूप उपनिवेशिकरण की प्रक्रिया शुरू हुई। बदलती आर्थिक स्थितियों ने पश्चिमी देशों के सामाजिक ढांचे में भी परिवर्तन हुआ और मध्यवर्ग का उदय हुआ है। नवसृजित मध्यवर्ग की अनुभूतियों की अभिव्यक्ति के लिए प्रचलित महकाव्यात्मक विधा अनुपयुक्त थी क्यूकी महाकाव्य अपने अप में उचवर्गीय अभिजात्यवादी मन और मूल्य रखता है, इसीलिए मध्यवर्ग ने अपनी अभिव्यक्ति के लिए जिस नई विधा को जन्म दिया वह नॉवेल या उपन्यास के रूप में प्रचलित हुआ।

विषय सूची

1.भूमिका 2. उपन्यास का शस्त्र अथवा सिद्धांत पक्ष। 3. हिन्दी उपन्यास की विकास यात्रा और प्रवृतिया। 4. हिन्दी उपन्यास: नए संदर्भ, नए आयाम-1 5. हिन्दी उपन्यास: नए संदर्भ, नए आयाम-2 6. हिन्दी उपन्यास की समकालीन प्रवृतियों के आलोक में उपन्यास शास्त्र संबंधी निष्कर्ष। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

25. यादव (ज्ञान प्रकाश)
इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता में नव उपनिवेशवाद एवं सांस्कृतिक द्वंद।
निर्देशका : प्रो. बीना जैन
Th 26682

सारांश

किसी भी समाज की संरचना के बुनियादी तत्त्वों में 'अर्थ' महत्त्वपूर्ण तत्त्व है। जीवन के संचालन के लिए अर्थ' आवश्यक है जो मनुष्य को हर युग में अपनी जरूरत के अनुरूप बदलता है। 18वीं–19वीं शताब्दी में भारत ब्रिटेन का उपनिवेश रहा। 18वीं सदी में विज्ञानवाद ने औद्योगिक क्रांति को जन्म दिया जिसे उपनिवेशवाद की शुरूआत का कारण मान सकते हैं। उपनिवेशवादी व्यवस्था में कोई भी राज्य दूसरे राज्य के बाजार पर नियंत्रण करके उसकी शासन व्यवस्था, भौगोलिक क्षेत्र आदि सभी पर कब्जा जमाता है, जिसका मुख्य उद्देश्य धन का अधिकतम शोषण करके स्वयं को मजबूत करना है। वस्तुतः उपनिवेशवाद विकास और उन्नति का चेहरा ओढ़कर सामने आता है, वह पहले अभाव पैदा करता है और उन अभावों को दूर करने के नाम पर उस समाज को अपना गुलाम बना लेता है। उपनिवेशवादी जानता है कि किसी भी देश या समाज को गुलाम बनाने के लिए उसकी संस्कृति, शिक्षा, संसाधनों और भाषा को नियंत्रण में लेना जरूरी है। भारत आजादी से पूर्व तक ब्रिटेन का उपनिवेश रहा। यद्यपि आजादी के बाद हमें लंबे समय तक उसके प्रभावों से जूझना पड़ा, अंततः 1991 में आर्थिक विकास के लिए भारत को भी उदारीकरण का रास्ता अपनाते हुए अपनी अर्थव्यवस्था को बंद से 'खुली अर्थव्यवस्था' का रूप देना पड़ा। जहाँ भारत में अभी तक देशी पूँजीपतियों (टाटा, बिड़ला, बजाज) का प्रभुत्व था वहीं उनको चुनौती देने के लिए बहुराष्ट्रीय कंपनियों का आगमन हुआ। यद्यपि आर्थिक नीतियों द्वारा अपनाये गए उदारीकरण ने भारत को भी वैश्वीकरण और भूमण्डलीकरण की ग्राम्य राज्य की व्यवस्था से जोड़ दिया और सीमा शुल्क आदि में भारी गिरावट आई। किंतु इसके साथ ही देश में 'रीमिक्स संस्कृति' का जोर भी चल पड़ा। कुछ विद्वानों ने इसे अपसंस्कृति, किसी ने मिश्रित संस्कृति की दृष्टि से देखा। कुल मिलाकर भारतीय संस्कृति पर इनका गहरा असर पड़ा।

विषय सूची

1.भूमिका 2. नव उपनिवेशवाद: अर्थ और व्याख्याएँ 3. इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता और उपनिवेशवाद। 4. इक्कीसवीं सदी की हिन्दी कविता और सांस्कृतिक द्वंद 5. काव्य-शिल्प एवं काव्य-भाषा पर प्रभाव। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

26. शर्मा (राजन कुमार)

सांस्कृतिक चेतना की निर्मिति में दूरदर्शन द्वारा प्रसारित रामायण और महाभारत धारावाहिक की भूमिका।

निर्देशका: प्रो. रमा

Th 26695

सारांश

रामायण और महाभारत संस्औत भाषा के ऐसे दो महान-ग्रंथ हैं जिन पर भारत की बड़ी साहित्यिक संपदा आश्रित है। इनसे न केवल संस्औत साहित्य ही, वरन भारतीय समाज भी प्रभावित हुआ है। सामान्य भारतीय जनजीवन पर रामायण और महाभारत का व्यापक प्रभाव पड़ा है। भारतीय समाज के विषय में कोई भी अध्ययन इन दोनों महाग्रंथों के बिना अपूर्ण है। इन दोनों ही ग्रंथों ने अनेक काव्यकारों, नाटककारों, पटकथा-लेखकों फिल्म व टी.वी. धारावाहिक निर्माताओं को अनेक कथानक दिए हैं। रामायण और महाभारत महाकाव्यों की कथाओं, पात्रों, चरित्रों तथा घटनाओं को आधार बनाकर कई फिल्में व धारावाहिक भी बनाये गए हैं जिनमें रामायण और महाभारत धारावाहिकों का नाम भी शामिल है जिनका प्रसारण दूरदर्शन द्वारा किया गया था।

दूरदर्शन के लिए महाकाव्य टी.वी. धारावाहिक रामायण और महाभारत का निर्माण डॉ. रामानंद सागर और बी.आर. चोपड़ा ने किया था। इनकी पटकथा पौराणिक ग्रंथों रामायण और महाभारत की कथाओं पर आधारित हैं। दूरदर्शन द्वारा प्रसारित रामायण और महाभारत धारावाहिकों द्वारा प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्औति को जीवंत रूप में टी.वी. के पर्दे पर प्रस्तुत गपअ किया गया है। इनमें प्राचीन भारतीय संस्औति की जीवंत परंपराओं, धारणाओं, चिन्ताओं, आकांक्षाओं एवं भावनाओं का जीवंत चित्रण मिलता है जिनके दर्शन से देशवासियों को प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्औति का गौरव ज्ञान प्राप्त हुआ है। इनमें निहित जीवन-मूल्यों का भारतीय लोकजीवन में काफी महत्त्व है। आज भी जीवन में इनकी शिक्षाएँ मनुष्य का दिशा-निर्देशन कर रही हैं। इक्कीसवीं सदी का यह समाज सूचना-प्रौद्योगिकी समाज है। सूचनाएँ 'ज्ञान का अयस्क' होती हैं। सूचना का संबंध समाज के विकास, तकनीकी विकास तथा मानवीय संसाधनों के विकास से है। सूचना संप्रेषण के प्रमुख माध्यमों में दूरदर्शन एक प्रमुख दृश्य-श्रव्य सार्वजनिक इलेक्ट्रॉनिक माध्यम है। सार्वजनिक प्रसारण का माध्यम होने के कारण दूरदर्शन केवल मनोरंजन का एक माध्यम ही नहीं है वरन् सांस्औतिक, धार्मिक, सामाजिक, शिक्षा, स्वास्थ्य, औषि, खेलकूद, बच्चों, युवाओं, महिलाओं व समाज के सभी वर्गों का प्रतिनिधित्व करता हुआ अपने 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' सिद्धान्त का मर्यादापूर्वक पालन करता आ रहा है। दूरदर्शन किसी राष्ट्र की प्रगति का प्रामाणिक व्याख्याता है। यह व्यक्ति को उसकी संस्औति से उसका प्रथम साक्षात्कार कराता है। आज भले ही विभिन्न टी.वी. चैनलों ने भी भारतीय धर्म एवं संस्औति, भारतीय इतिहास, परम्परा और लोकशैली से संबंधित कई कार्यक्रम आरंभ कर विभिन्न राज्यों की लोक-संस्औति को जन-जन तक पहुँचाकर सांस्औतिक चेतना कि निर्मिति में नये-नये आयाम जोड़े हैं। किन्तु दूरदर्शन द्वारा प्रसारित 'रामायण' और 'महाभारत' धारावाहिकों की अपनी एक विशिष्ट भूमिका है। निश्चित रूप से दूरदर्शन द्वारा प्रसारित 'रामायण' और 'महाभारत' धारावाहिकों ने एक आधुनिकोत्तर सांस्औतिक चेतना को जन्म दिया है।

विषय सूची

1. प्राकथन 2. सांस्कृतिक चेतना: अवधारणा और स्वरूप 3. वैश्वीकरण, भारतीय संस्कृति और मीडिया 4. दूरदर्शन द्वारा प्रसारित रामायण तुलनात्मक अध्ययन। 5. दूरदर्शन द्वारा प्रसारित रामायण और महाभारत धारावाहिकों का तुलनात्मक अध्ययन। 6. दूरदर्शन द्वारा प्रसारित रामायण और महाभारत धारावाहिकों में निहित सांस्कृतिक चेतना। 7. दूरदर्शन द्वारा प्रसारित रामायण और महाभारत धारावाहिकों संबंधी विविध दृष्टियाँ । उपसंहार, संदर्भ ग्रंथ सूची और परिशिष्ट।

27. शेवतांशु शेखर
निर्गुण संत कवियों की काव्यभाषा का आलोचनात्मक अध्ययन ।
निर्देशक: प्रो. मोहन
Th 26686

सारांश

अनादिकाल से ही कविता मनुष्य की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम रही है। सभ्यता की विकास प्रक्रिया में अणजत ज्ञान को कविता के माध्यम से व्यक्त किया जाता रहा है। कविता के मूल मे भाषा है। भाषा के बिना कविता अभिव्यक्त नहल हो सकती या यों कहें की भाषा के बगैर कविता का अस्तित्व असंभव है। विश्व की सभी भाषाओं में कविता का अस्तित्व

दिखलाई पड़ता है। कवि कविता के माध्यम से अपने समाज की अनुभूतियों, आकांक्षाओं, स्वप्नों, विडंबनाओं आदि को अभिव्यक्त करता है। कविता का लक्ष्य कुछ भी हो सकता है। संस्ंत काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य प्रयोजन को लेकर व्यापक विचार-विमर्श हुए हैं। कविता का मूल उद्देश्य मानव मूल्यों का विस्तार, संस्कार एवं परिष्कार करना है। इस –ष्टि से कविता का प्रोयोजन आनंद प्राप्ति, यशोपार्जन, धनोपार्जन, सुधार आदि हो सकता है। हिंदी साहित्य की भक्तिकालीन धारा में संत साहित्य का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। संत साहित्य की महत्ता केवल उसके कथ्य को लेकर ही नहल बल्कि उसकी भाषा को लेकर भी है। पहली बार संत कवियों ने स्थापित काव्यभाषा अपभ्रंश की परिपाटी को छोड़कर आम बोलचाल की स्थानीय भाषाओं में रचनाएँ की ओर उन भाषाओं को एक सक्षम काव्यभाषा के तौर पर स्थापित किया। काव्यभाषा से क्या तात्पर्य है? आमतौर पर काव्यभाषा का तात्पर्य है- 'कविता की भाषा'/ भाषा कविता की मूल संरचना है। भाषा में ही भौतिक रूप से कविता सम्पन्न होती है, अपना आकार ग्रहण करती है। हिंदी साहित्य का भक्तिकाल भारतवर्ष के सांस्ंतिक क्षितिज पर अत्यंत महत्वपूर्ण परिघटना है। इसका अखिल भारतीय विस्तार एसे और अधिक महत्वपूर्ण बनाता है। भक्ति-आंदोलन का प्रभाव साहित्य, भाषा, कला के विभिन्न रूपों पर आज भी स्पष्ट रूप से –ष्टिगोचर होता है। भक्ति आंदोलन के आविर्भाव के समय ही लगभग आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का विकास शुरू होता है। इसका प्रमुख कारण था कि संतों ने कविता मे प्रचलित संस्ंत एवं अपभ्रंश को छोडकर देशभाषा मे लिखना शुरू किया। हालांकि भक्ति आंदोलन के आविर्भाव से कुछ पहले ही बिद्यापति ने 'देसील बयना सब जन मिट्ठा' का उद्घघोष कर दिया था। इस स्तर पर संत कवियों का परंपरागत भाषा को छोडकर लोकभाषा को अभिव्यक्ति का साधन बनाना अत्यंत क्रांतिकारी प्रयास जान पड़ता है। भाषा भावों को अभव्यक्ति करने का साधन है। परस्पर विचार-विनिमय में भाषा माध्यम का कार्य करती है। आमतौर पर भाषा के दो रूप होते हैं-दैनिक प्रयोग की भाषा एवं साहित्य की भाषा। इन दोनों भाषाओं मे मूल अंतर सर्जनात्मकता का है। इस प्रकार भाषा मानव सभ्यता की रचनात्मक यात्रा की प्रमुख सहयात्री हैं। सभ्यता के विकास के साथ भाषा का विकास भी अन्यान्य भाव से जुड़ा हुआ है। रचनाकार के सृजन को साहित्य कहते हैं और साहित्न की स्थिति भाषा में है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है की भाषा की कलात्मक अभिव्यक्ति साहित्य है।

विषय सूची

1.भूमिका 2. काव्यभाषा: अर्थ और स्वरूप। 3. भक्ति आंदोलन एवं निर्गुण पंथ। 4. निर्गुण संत कवियों की काव्यभाषा का आलोचनात्मक अध्ययन। 5. निर्गुण संत कवियों की काव्यभाषा का आलोचनात्मक अध्ययन 6. निर्गुण संतों की काव्यभाषा के पारिभाषिक शब्द। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

28. शॉ (अमरदीप)
समकालीन हिन्दी उपन्यासों में गाँव और शहर का अंत: संबंध ।
निर्देशक: प्रो. विनय विश्वास
<u>Th 26698</u>

सारांश

समाज परिवर्तनशील है और साहित्य उस परिवर्तन को रूपायित करन का माध्यम। इसमें भी उपन्यास विधा इस कार्य को और सहजता तथा पूर्णता के साथ प्रस्तुत करती है। जब से ॠहदी उपन्यास का उदय हुआ है, उसकी लोकप्रियता कभी कम नहल हुई। उपन्यास के सामाजिक योगदान पर कोई प्रश्न-चिन्ह नहल लग सकता। व्यक्ति का सर्वांगीण चित्रण उपन्यास में ही संभव हो पाता है। स्वाधीनता आन्दोलन में उपन्यास का योगदान महत्वपूर्ण है। प्रेमचंद ने इसे साहित्य के सर्वोच्च शिखर पर स्थापित किया। उपन्यास की समृद्ध परम्परा का अनुसरण करते हुए जब ॠहदी उपन्यास समकालीन दौर म पहुँचता है तो यह और भी विविधता और नवीनता प्राप्त करता है।ॠहदी उपन्यास के इतिहास में आठवां-नौवां दशक ॠहदी उपन्यास का उत्कर्ष काल कहा जा सकता है। स्वाधीनता पूर्व ॠहदी उपन्यासों के केंद्र में मुख्य रूप से राष्ट्रीय आन्दोलन छाया रहा। स्वातंयोत्तर और साठोत्तरी उपन्यासों में आधुनिकतावाद से उपजे मध्यवगऍय जीवन के द्वंद्व और विसंगतियों ने स्थान पाया। प्रेमचंद ने मुख्य रूप से मध्यवगऍय जीवन से सम्बद्ध उपन्यास को ग्रामीण यथार्थ से जोड़कर उसे नई दिशा दी। यह परम्परा स्वतंत्रता के बाद भी चलती रही। भारतीय समाज में 'गाँव' और 'शहर' का अस्तित्व प्राचीन काल से है। प्राचीन काल में राजधानियों के आस-पास नगरों का विकास हुआ। औपनिवेशिक काल में देश के सामाजिक-आणथक ढांचे में परिवर्तन होने से गाँव और शहर के बीच संबंधों में बदलाव आना शुरू हुआ। अंग्रेजों द्वारा किये गए भूमि-सुधारों का ग्रामीण अर्थ व्यवस्था पर प्रतिकूल असर पड़ा। महाजनी व्यवस्था में किसानों के शोषण का यथार्थ चित्रण प्रेमचंद के उपन्यासों में मिलता है। उद्योगों के विकास के साथ गाँव और शहर के बीच परस्पर आदान-प्रदान में वृद्धि हुई। ग्रामीण संस्ंति शहरों को आकणषत करती है और शहरों की भव्यता गाँवों को। आजादी के बाद औद्योगीकरण और शहरीकरण के कारण गाँव शहरोन्मुख हुआ। इसके पीछे गाँव की शोषण कारी व्यवस्था भी जिम्मेदार थी। ग्रामीण राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार और मूल्यहीनता और शिक्षा के अभाव के कारण गाँव का विकास बाधित हुआ। नागार्जुन के 'बलचनमा', रेणु के 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा', श्रीलाल शुक्ल के 'रागदरबारी', राही मासूम रजा के 'आधा गाँव', शिवप्रसाद ॠसह के 'अलग-अलग वैतरणी' तथा शानी के 'काला जल' में ग्रामीण यथार्थ के विविध रूपों का चित्रण हुआ है। गाँव से आये नवागंतुकों को शहरों में अनेक तरह की चुनौतियों जैसे : रोजगार, आवास, समायोजन, आदि का सामना करना पड़ा। इनके आने से जनसँख्या वृद्धि हुई जिससे शहरों की आवासीय व्यवस्था चरमराने लगी। रोजगार के अभाव में भूख और गरीबी नगरों की गंभीर समस्या बनी जिससे अपराध वृत्ति को बढ़ावा मिला। इसका चित्रण स्वातंयोत्तर ॠहदी उपन्यासों में मिलता है। 'इलाचंद्र जोशी' की 'सुबह की भूलें', 'जहाज का पंछी', 'अमृतलाल नागर' के 'बूंद और समुद्र' उदय शंकर भट्ट के सागर, लहरें और मनुष्य आदि में नगरीय परिवेश में संघर्ष करते ग्रामीण जीवन को देखा जा सकता है।

विषय सूची

1.भूमिका 2. समकालीन हिन्दी उपन्यास की पृष्ठभूमि। 3. समकालीन हिन्दी उपन्यास में गाँव। 4. समकालीन हिन्दी उपन्यास में शहर। 5. समकालीन हिन्दी उपन्यास की अंतवस्तु: गाँव और शहर के अन्तः संबंध। 6. समकालीन हिन्दी उपन्यास की भाषा और सरंचना: गाँव और शहर के अन्तः संबंध। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

29. सिंह (अनुराग)
मध्यकालीन हिन्दी साहित्य की आधुनिकता और लोकजागरण ।
निर्देशक: प्रो. आलोक रंजन पाण्डेय
<u>Th 26689</u>

सारांश

मध्यकालीन हिन्दी साहित्य अपनी बोलियों के वैविध्य में सिमटा हुआ बहुत ही समृद्ध साहित्य हैं। क्षेत्रीयता इसके स्वरूप को और अधिक विस्तृत कैनवास देती है लगातार हम एक बात सुनते हैं की भारत की विविधता में एकता है। यह बात इस रूप में अलग अर्थ देती है लेकिन जब कहा जाता है की एकता में विविधता है तो इसका आशय दूसरत है। आज हम जिस भारतीयता की बात करते हैं उसके निर्माण की नींव में एक बड़ा योगदान मध्ययुगीन समय, परिस्थिति व समाज का भी है। कोई वर्तमान या भविष्य अतीत के बिना निर्मित नहीं होता है। हिन्दी साहित्य के इतिहास में मध्यकाल को जिन दो भागो में देखा गया, उसका पूर्व भाग भक्ति आंदोलन से अभिप्रेरित रहा। इस समय में भक्ति को लेकर जो काव्यात्मक रचनात्मक्क का उत्कर्ष दिखाई दिया, उसे समझने के लिए कई आयामों से इस समय, समाज व रचनाओं को देखना पड़ेगा। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल इसे दक्षिण से उत्तर के रूप में फैलते हुए देख रहे हैं और यह भी जोड़ रहे हैं की भक्ति आंदोलन को राजनीतिक रूप से शून्य पड़े जनता के हृदय में फैलने के लिए स्थान मिला। आधुनिकता पर चर्चा करते हैं तो लगता है की कई मायनों में यह असपष्ट और उलझी हुई सी अवधारणा है। इसकी अस्पष्टता इस पर कई तरह के विचारों को लेकर है। आधुनिकता को लेकर ठीक ठीक एक फ्रेम बन गया हो की यही आधुनिकता है, ऐसा नहीं है। दुनिया भर के सभी विद्वानों ने आधुनिकता को एकमत से एक रूप में स्वीकृत कर लिया है, ऐसा भी नहीं है। आधुनिकता आने के साथ साथ लोग धीरे धीरे जागरूक भी हो रहे हैं। असल में आधुनिकता और लोकजागरण एक ही सिक्के के दो पहलू मालूम होते है। एक और से तर्क दिखाई दे रहे हैं तो स्थापित मान्यताएँ टूट रही हैं और इसके टूटने की वजह से लोगों में नई चेतना दिखाई दे रही है। वह नई चेतना ही जागृति का कार्य कर रही है। धर्म जाती और सामंती स्वरूप जिनसे मिलकर मध्यकाल की पूरी सरंचना तैयार होती हुई दिखाई देती है, इन सबमें एक बड़ा परिवर्तन दिखाई देता है।

विषय सूची

1.भूमिका 2. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य। 3. मध्यकालीन बोध: अवधारणा एवं स्वरूप। 4. आधुनिकता की अवधारणा एवं स्वरूप । 5. मध्यकालीन हिन्दी साहित्य में आधुनिकता। 6. लोकजागरण की अवधारणा और हिन्दी साहित्य। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

30. सिन्हा (रूपाली)

हिन्दी उपन्यासों में यौन कर्मी महिलाएं ।

निर्देशक: प्रो. अपूर्वानंद

Th 26700

सारांश

अनादिकाल से ही कविता मनुष्य की अनुभूतियों को अभिव्यक्त करने का सशक्त माध्यम रही है। सभ्यता की विकास प्रक्रिया में अणजत ज्ञान को कविता के माध्यम से व्यक्त किया जाता रहा है। कविता के मूल मे भाषा है। भाषा के बिना कविता अभिव्यक्त नहळ हो सकती या यों कहें की भाषा के बगैर कविता का अस्तित्व असंभव है। विश्व की सभी भाषाओं में कविता का अस्तित्व दिखलाई पड़ता है। कवि कविता के माध्यम से अपने समाज की अनुभूतियों, आकांक्षाओं, स्वप्नों, विडंबनाओं आदि को अभिव्यक्त करता है। कविता का लक्ष्य कुछ भी हो सकता है। संस्ंत काव्यशास्त्र एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र में काव्य प्रयोजन को लेकर व्यापक विचार-विमर्श हुए हैं। कविता का मूल उद्देश्य मानव मूल्यों का विस्तार, संस्कार एवं परिष्कार करना है। इस —ष्टि से कविता का प्रोयोजन आनंद प्राप्ति, यशोपार्जन, धनोपार्जन, सुधार आदि हो सकता है। हिंदी साहित्य की भक्तिकालीन धारा में संत साहित्य का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। संत साहित्य की महत्ता केवल उसके कथ्य को लेकर ही नहळ बल्कि उसकी भाषा को लेकर भी है। पहली बार संत कवियों ने स्थापित काव्यभाषा अपभ्रंश की परिपाटी को छोड़कर आम बोलचाल की स्थानीय

भाषाओं में रचनाएँ की ओर उन भाषाओं को एक सक्षम काव्यभाषा के तौर पर स्थापित किया। काव्यभाषा से क्या तात्पर्य है? आमतौर पर काव्यभाषा का तात्पर्य है- 'कविता की भाषा'/ भाषा कविता की मूल संरचना है। भाषा में ही भौतिक रूप से कविता सम्पन्न होती है, अपना आकार ग्रहण करती है। हिंदी साहित्य का भक्तिकाल भारतवर्ष के सांस्ैतिक क्षितिज पर अत्यंत महत्वपूर्ण परिघटना है। इसका अखिल भारतीय विस्तार एसे और अधिक महत्वपूर्ण बनाता है। भक्ति-आंदोलन का प्रभाव साहित्य, भाषा, कला के विभिन्न रूपों पर आज भी स्पष्ट रूप से – ष्टिगोचर होता है। भक्ति आंदोलन के आविर्भाव के समय ही लगभग आधुनिक भारतीय आर्य-भाषाओं का विकास शुरू होता है। इसका प्रमुख कारण था कि संतों ने कविता मे प्रचलित संस्ंत एवं अपभ्रंश को छोडकर देशभाषा मे लिखना शुरू किया। हालांकि भक्ति आंदोलन के आविर्भाव से कुछ पहले ही बिद्यापति ने 'देसील बयना सब जन मिट्ठा' का उद्धघोष कर दिया था। इस स्तर पर संत कवियों का परंपरागत भाषा को छोडकर लोकभाषा को अभिव्यक्ति का साधन बनाना अत्यंत क्रांतिकारी प्रयास जान पड़ता है। भाषा भावों को अभव्यक्ति करने का साधन है। परस्पर विचार-विनिमय में भाषा माध्यम का कार्य करती है। आमतौर पर भाषा के दो रूप होते हैं-दैनिक प्रयोग की भाषा एवं साहित्य की भाषा। इन दोनों भाषाओं मे मूल अंतर सर्जनात्मकता का है। इस प्रकार भाषा मानव सभ्यता की रचनात्मक यात्रा की प्रमुख सहयात्री हैं। सभ्यता के विकास के साथ भाषा का विकास भी अन्यान्य भाव से जुड़ा हुआ है। रचनाकार के सृजन को साहित्य कहते हैं और साहित्न की स्थिति भाषा में है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है की भाषा की कलात्मक अभिव्यक्ति साहित्य है।

विषय सूची

1.भूमिका 2. योनिकता, यौन कर्म और यौन कर्मी। 3. हिन्दी उपन्यासों में यौन कर्मी महिलाओं का सामाजिक संदर्भ। 4. हिन्दी उपन्यासों में यौन कर्मी महिलाओं का आर्थिक संदर्भ। 5. यौन बाजार में अदृश्य ग्राहक। 6. यौन कर्मी जीवन और प्रतिरोध के विभिन्न आयाम। 7. हिन्दी उपन्यासों की दृष्टि में यौन कर्म। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

31. सिंह (ललित कुमार)
बाल रंगमच के संदर्भ में मुखौटों और कठपुतलियों के प्रयोगों का सांस्कृतिक अध्ययन।
निर्देशक: प्रो. दर्शन पाण्डेय
Th 27045

सारांश

बाल रंगमंच से तात्पर्य ऐसे रंगमंच से है जो बच्चों के मनोभावों तथा कार्य-व्यापार को केंद्र में रखकर किया जाता है। बच्चों कि दुनिया खेल, भाव और कल्पना प्रधान होती है। इसलिए बाल रंगमंच में बच्चों की नज़र से दुनिया देखने और समझने की कोशिश की जाती है। बाल रंगमंच के अंतर्गत नाटक। गीत- संगीत, नृत्य तथा विविध कलाओं को शामिल किया जाता है जिससे बच्चों का सर्वगीर्ण विकास हो सके। बच्चों से सृजनात्मक क्षमता जन्मजात होती है बस उसे एक दिशा देने कि ज़रूरत होती है। यह बाल रंगमंच की ही खूबी है जो उन्हे अपना मुकम्मल जहां बनाने के लिए प्रेरित करता है और इस धारणा को खारिज करता है कि तुम अभी बच्चे हो। पेशेवर तरीके से बाल रंगमंच कि शुरुआत 1953-54 के लगभग रंगकर्मी समर चटर्जी सान्निध्य में हुई। जबकि लोक में बाल रंगमंच कि समृद्ध परंपरा पहले से ही थी। अनुभूति और सम्प्रेषण रंगमंच का प्रमुख तत्व है जो किसी न किसी यथार्थ को सहज और गहन रूप में अभिव्यक्त करता है। काला के सौंदर्यशास्त्री दृष्टि से देखें तो यथार्थ कि यथावत पहचान संभव नहीं है जब कि उसे किसी संप्रेष्य माध्यम से न

समझे या ग्रहण करे। रंगमंच के क्षेत्र में यथार्थ विभिन्न रंग युक्तियों के द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है। इनमें मुखोता और कठपुतली काला सशक्त काला माध्यम है। बच्चे भविष्य के व्यकती नहीं है बल्कि वो पहले से व्यक्ति है। जिनकी आत्माओं में बीज है उन सब विचारों और भावनाओं के जो हमारे अंदर हैं। जाइसिए जैसे ये बीज विकसित होंगे उनमें भविष्य कि कोपले फूटेंगी हमे उनके विकास को बहुत सहदयता से सज्जनता से आहिस्ता आहिस्ता निर्देशित करना है। बच्चे अपने सृजनात्मक रूप में किसी से भी कम नहीं है। वह संभावनाओं के पुंज है। बाल रंगमंच में मुखोटों और कठपुतलियों के प्रयोगो द्वारा उनकी संभावनाओं को विकसित किया जा सकता है। अंत में यही कि बाल रंगमंच सिर्फ नाट्य तत्वों की बारीकियों को ही नहीं सिखाता बल्कि वह जीवन के विविध पहलुओं पर बच्चों से संवाद करता है। वह इस बात पर ज़ोर देता है कि जो बच्चा जीवन कि सुंदरता से प्यार करना सीख जाएगा वह भविष्य में आने वाली हर असमानता कुरूपता और संवेदनाहीन होते समाज का विरोध करेगा बचपन में मिले अनुभव उसके जीवन में रोशनी कि तरह कम करेंगे।

विषय सूची

1.बाल रंगमच और रंग प्रयोग की परंपरा 2. भारतीय रंगमंच में मुखौटों का प्रयोग और परंपरा 3. भारतीय रंगमच के कठपुतलियों का प्रयोग और परंपरा 4. बाल रंगमंच के संदर्भ में मुखौटों के प्रयोग का सांस्कृतिक अध्ययन 5. बाल रंगमंच के संदर्भ में कठपुतलियों के प्रयोग का सांस्कृतिक अध्ययन. उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

32. सुमित कुमार

मॉरीशस में आप्रवासी जीवन के प्रश्न और रामदेव धुरंधर का कथा साहित्य ('पथरीला सोना' तथा 'छोटी मछली बढ़ी मछली' उपन्यासों के विशेष संदर्भ में)।

निर्देशक: प्रो. श्योराज सिंह

Th 27047

सारांश

अप्रवासन का संबंध मनुष्य के जीवन के साथ बहुत लंबे समय से जुड़ा हुआ है। यद्यपि जिन आधुनिक अर्थों में अप्रवासन और आप्रवासी शब्द का प्रयोग हम करते है वह अपने प्रारम्भिक स्वरूप से बहुत भिन्न है। आज अप्रवासन के अंतर्गत यहूदियों के बेबीलोनिया से प्रवसन से लेकर गिरमिटिया मजदूरों के अप्रवासन तथा आधुनिक समय में बेहतर जीवन परिस्थितियों और रोजगार कि तलाश में पश्चिमी एवं खाड़ी देशों में हो रहे अप्रवासन को भी शामिल किया जाता है। प्रारम्भ में जहां अप्रवासन को नकारात्मक अर्थ में लिया जाता था जिसमे गृहभूमि से अलग हो जाने का दंश प्रमुख होता था तो कालांतर में इसे सकारात्मक अर्थों में लेकर एक व्यक्तित्व में एकाधिक संस्कृतियों को शामिल करने के अवसर के रूप में देखा जाने लगा। वासटवा में प्रत्येक व्यक्ति अपने जीवन में कभी न कभी प्रवसन अथवा गृहभूमि से अलगाव का अनुभव करता ही है। स्त्री तो इस दृष्टि से संसार के सबसे पुराने आप्रवासियों में शामिल है। पारिभाषिक तौर पर भले ही इन विस्थापनों को अलग-अलग श्रेणियों में रखा जाए परंतु मनुष्य के हृदया के तंतुओं को झंकृत करने वाली संवेदना देश या प्रदेश कि सीमाओं में बंधी नहीं होती। मॉरीशस जैसे देशों में अप्रवासन मुख्यतः गिरमिटिया मजदूरों के रूप में हुआ है। मॉरीशस के सभी बड़े रचनाकारों ने इन मजदूरों के शोषण, संघर्ष और जीवट को अपने साहित्य का केंद्र बिन्दु बनाया है। रामदेवी धुरंधर मॉरीशस के अग्रणी उपन्यासकारों में सम्मिलित है। उनके साहित्य में मॉरीशस के आप्रवासी जीवन के विभिन्न पक्षों को अभिव्यक्ति मिली है। प्रस्तुत शोध प्रबंध विशेष रूप में उनके सप्तखंडिय उपन्यास 'पथरीला सोना' और राजनीतिक उपन्यास 'छोटी मछली बड़ी मछली' को केंद्र में रखकर लिखा गया है। फिर भी शोध के अंतर्गत उनके कथा साहित्य का परिचयात्मक अध्ययन भी प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध पाँच अध्यायों में विभक्त है।

विषय सूची

1. भूमिका 2. आप्रवासन: अर्थ, अवधारणा और इतिहास तथा रामदेव धुरंधर का कथा साहित्य। 3. 'पथरीला सोना' तथा 'छोटी मछली बड़ी मछली' उपन्यासों में व्यक्त मॉरीशस के जीवन के विविध प्रसंग। 4. रामदेव धुरंधर के उपन्यासों में स्त्री, मजदूर और किसान वर्ग। 5. 'पथरीला सोना' में संकर्मणशील समाज तथा

बहुसंस्कृतिवाद का स्वरूप 6. रामदेव धुरंधर के कथा साहित्य का शिल्प पक्ष। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

33. सोनिका

हिन्दी कविता में किसान जीवन का बदलता स्वरूप (1960ई .-2015 ई.) ।

निर्देशक: प्रो. मोहन

Th 27046

सारांश

किसी साहित्य कि सार्थकता इस बात से सिद्ध होती है कि उसमें समाज अपने पूर्ण रूप में उपस्थित है या नहीं। समाज में हो रही उथल पुथल कि व्यंजना ही साहित्य को प्राणवान बनती है। भारतीय समाज कि चेतना को जानने के लिए भारत के 'किसान-समाज' को समझना ज़रूरी है। 'किसान' भारतीय ग्रामीण सरंचना का महत्वपूर्ण और ज़रूरी हिस्सा है। इसकी अभिव्यक्ति हिन्दी कथा साहित्य और कविता दोनों में ही निरंतर होती रही है। कृषि-परंपरा कि शुरुआत से लेकर आज तक किसान-जीवन के विभिन्न स्तरों पर निरंतर परिवर्तन होता रहा है। समाज में घटित घटनाएँ और तत्कालीन उथल पुथल ही साहित्य में नज़र आती है और इन्हीं घटनाओं से प्रेरित होकर साहित्य लिखा जाता है। इसी तरह किसान न तो कभी कविता के केंद्र में रहा और न ही पूर्णतया उपेक्षित। जिस तरह समाज ने किसान को देखा उसी तरह कविता ने भी। जब भक्तिकाल में मध्यवर्ग को अभिव्यक्ति मिली तो किसान पर भी ध्यान गया, लेकिन जब रीतिकाल में नायिका-भेद, प्रेम, शृंगार आदि के आवेग में कविता लिखी गई तो किसान खुद-ब-खुद पीछे छूट गया। दरबारी कवियों का ध्यान राजाओं को खुश करने में लगा रहा। नब्बे के दशक से पूर्व के अधिकांश कवियों ने किसान को प्रकृति के साथ जोड़कर ही प्रकृति कि सुंदरता का वर्णन किया है। लेकिन इक्कीसवी सदी के कवि प्रकृति और पर्यावरण को नकारात्मक रूप से प्रभावित कर रही टेक्नालजी कि सच्चाई को भी उजागर करते है। खेतों में रसायनों और उर्वरकों का प्रयोग बढ़ा है। बढ़ते कीटनाशकों के प्रभाव से अपनी उत्पादन क्षमता खोकर न सिर्फ ज़मीनें बंजर हो रही है, बल्कि किसानों के स्वास्थ्य पर भी विपरीत प्रभाव पड़ रहा है। अनेक उतार चढ़ाव से गुजरते हुए आज किसान कविता इक्कीसवी सदी के मुहाने पर खड़ी है। यहाँ पहुँचते-पहुँचते हिन्दी कविता कई काव्यन्दोलनों से भी गुज़री और कई आरोप भी झेले। अपनी लंबी उम्र में कविता ने अपनी संवेदना के स्टार के साथ साथ रूप में परिवर्तन को भी स्वीकार किया है। यह अस्वाभाविक नहीं है कि ज़िंदगी कि सार्थकता कि तलाश करती कविता जैसे-जैसे आगे बढ़ती है, वैसे-वैसे वह कुछ पुराने संदर्भों को पीछे छोड़ते हुए नए मूल्यों को ग्रहण करती है। किसान कविता में न सिर्फ संवेदनात्मक स्टार पर परिवर्तन हुआ है बल्कि उसके रूप में भी परिवर्तन आया है। केदारनाथ अग्रवाल, नागार्जुन, त्रिलोचन के यहाँ बिम्ब बहुलता में हैं, लेकिन इक्कीसवी सदी तक आते-आते बिंबों में कमी आई है और आख्यान बढ़े हैं। भाषा के स्टार पर कविता कुछ-कुछ गद्य जैसी लगने लगी है। आज़ादी से पूर्व और आज़ादी के बाद तक अधिकांश कवीयों ने 'कृषक' शब्द का प्रयोग किया है लेकिन उदारीकरण के बाद किसान जीवन कि समस्याओं पर लिख रहे अधिकांश कवियों के यहाँ 'किसान' शब्द का प्रयोग हुआ है।

विषय सूची

1. भूमिका: हिन्दी कविता का एटिहासिक परिदृश्य और किसान 2. स्वतंत्रोतर हिन्दी कविता मैं चेतना के प्रमुख कवि 3. आर्थिक, सांस्कृतिक, सामाजिक व राजनीतिक परिदृश्य के आलोक में किसान कविता 4. उदारीकरण, निजीकरण और भूमंडलीकरण के आईने में किसान 5. ग्रामीण सामाजिक संरचना में किसान जीवन के अंतर्विरोध 6. हिन्दी की किसान का स्थाप्तय, उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

34. हिदाम पिटर

महाराज कुमारी बिनोदिनी देवी और मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में स्त्री-चेतना का तुलनात्मक अध्ययन ।

निर्देशक: प्रो. मोहन

Th 27048

सारांश

भारत दुनिया का अकेला ऐसा देश है जहां एक साथ कई भाषाओं के साहित्य कि समृद्ध परंपरा मिलती है। भारतीय साहित्य कि अवधारणा में भरत कि समस्त भाषाओं का साहित्य समाहित है। इसकी अवधारणा को समग्रता में समझने के लिए विविध बहशोण में रचित साहित्य का एक-दूसरे के संदर्भ में अध्ययन जरूरी है। इसका सबसे अच्छा रास्ता तुलनात्मक अध्ययन है। जैसे विश्व साहित्य की अवधारण तुलनात्मक आध्यान के बिना अधूरी है, वैसे ही भारतीय साहित्य कि अवधारणा भी तुलनात्मक अध्ययन के बिन अधूरी है। तुलनात्मक अध्ययन भारत के विविधतापूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक परिवेश पर आधारित साहित्यिक संवेदना और शिल्प को समझने में सहायक होता है। मैंने अपने प्रबंध को पाँच अध्ययओन में विभिक्त क्या है पहले अध्ययय में स्त्री चेतना कि अवधारणा और स्वरूप को समझने के लिए स्त्री मुक्ति आंदोलन को आधार रूप से लिया गया है। दूसरे अध्याय में आधुनिक हिन्दी साहित्य और मणिपुरी साहित्य में स्त्री चेतना के बारे में उल्लेख किया गया है। त्रित्या अध्याय में महाराज कुमारी बिनोदिनी देवी और मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य में स्त्री चेतना कि चर्चा कि गयी है। दोनों रचनाकारो ने क्रमशः मणिपुरी और हिन्दी कहानी और उपन्यास में स्त्री चेतना पर प्रकाश डाला है। चतुर्थ अध्याय में दोनों रचनाकारों के स्त्री चिंतन और चेतना पर तुलनात्मक दृष्टि डाली गई है। पांचवे अध्याय में दोनों साहित्यकारों के कथा साहित्य कि शिल्पगत वेशेषताओं के बारे में विश्लेषण किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध में बिनोदिनी और मन्नू भण्डारी के कथा साहित्य का तुलनात्मक विवेचन मणिपुरी और हिन्दी भाषा और उसकी संस्कृति को आमने सामने रख कर के प्रयास के अंतर्गत किया गया है। प्रस्तुत शोध प्रबंध के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि भारत के विभिन्न भाषा-भाषी क्षेत्रों में स्त्रीयों कि स्थिति लगभग एक जैसी है। प्रस्तुत शोध प्रबंध भारतीय भाषाओं के साहित्य और हिन्दी साहित्य को जोड़ने का एक छोटा सा उपक्रम भी है। ताकि भारता कि बहुभाषिकता और सांस्कृतिक बहुलता में अंतर्निहित एकतमकता को रेखांकित किया जा सके।

विषय सूची

1. भूमिका 2. स्त्री-चेतना: स्वरूप और अवधारणा। 3. आधुनिक भारतीय साहित्य में स्त्री-चेतना का उद्भव और विकास। 4. मन्नू भण्डारी और बिनोदिनी के कथा साहित्य में स्त्री-चेतना। 5. मन्नू भण्डारी और बिनोदिनी के कथा साहित्य में स्त्री-चेतना का तुलनात्मक आध्यान। 6.मन्नू भण्डारी और बिनोदिनी की कहानी और उपन्यास के स्टार पर भाषा और शिल्प का तुलनात्मक अध्ययन. , उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची, पत्र-पत्रिकाएँ

35. त्रिपाठी (अभिप्राय)

उन्नीसवीं शताब्दी की भाषाई राजनीति नवजागरण और राजा शिवप्रसाद 'सितार-ए-हिन्द' ।

निर्देशक: प्रो. मोहन

Th 26684

सारांश

हिन्दी साहित्य के इतिहास में जिस समय को 'नवजागरण' के नाम से जाना जाता है उसे बाद में लोकप्रिय रूप से 'भारतेन्दु युग' कहा जाने लगा। रामविलास शर्मा द्वारा इस युग को हिन्दी नवजागरण कहकर पुकारने से इस समय के जातीय जागरण भाषा संबंधी समस्याओं आदि को और अधिक तत्परता से जानने की कोशिश की गई। 1850 ई। से 1900 ई. तक फैले इस कालखंड में विविध राजनीतिक, सामाजिक बदलाव हुए तो साथ ही शिक्षित बुद्धिजीवियों का उदय भी हुआ। हिन्दी क्षेत्र में जो लेखन इस समय हुआ उसी से यहाँ की जातीय अस्मिता व नवजागरण का कार्य लिया गया। इस लेखन में एक और क्षेत्रीय संस्कृति भाषा आदि का आग्रह है तो दूसरी और राष्ट्र और राष्ट्र निर्माण व अखिल भारतीय पहचान गढ़ने का भी प्रयास है। अखिल भारतीय या राष्ट्र की संकल्पना में अनेक जतियों धर्म-संप्रदायों को एक साथ समेत लेने के प्रयास भी यहाँ इस समय में मिलते है। औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत में ऐसी परिस्थितियाँ निर्मित हुई कि 'परिवर्तन' को एक खास नज़रिये से देखा जाने लगा। बंगाल से उठी इस परिवर्तन कि लहर धीरे धीरे ही सही लेकिन भारत के सभी क्षेत्रों में पहुंची। इसी से कुछ पूर्व औपनिवेशिक सत्ता द्वारा एक और इतिहास लिखने के प्रयत्न हुए तो दूसरी और आर्थिक शोषण और सैनिक अत्याचार बढ़ते गए। एक राष्ट्र के रूप में भारत कि संकल्पना को अंग्रेज़ बुद्धिजीवियों मिल मैकाले आदि ने पहले ही खारित कर दिया था। ऐसी स्थिति में किसी भी देश के लोग अपने स्वाभिमान कि रक्षा हेतु प्राचीन अतीत कि संस्कृति पर गर्व करें यह सहज स्वाभाविक है। राजनीतिक- सामाजिक परिवर्तनों से भरे इस समय में साहित्य केवल साहित्य न रहकर इतिहास संस्कृति

और सामाजिक परिवर्तन के साधन के रूप में हमारे सामने आता है; भारतेन्दु युग का साहित्य इसका उदाहरण है। इसे तथ्य रूप में स्वीकार किया जा सकता है कि हिन्दी लेखकों के सामने जो समाज था वह हिन्दी बाहुल्य था और उसी के सांस्कृतिक भावबोध के आधार पर उन्हें रचना करना था। इसी कारण ऐसे प्रतीकों परम्पराओं का प्रयोग भी अटपटा नहीं लगता। लेकिन इस समाज का प्रतिनिधि होने के साथ साथ इनकी अपनी सामाजिक प्रभुत्व वाली आकांशाएँ भी थीं, औपनिवेशिक शासन का वफादार भी बनना महत्वपूर्ण प्रश्न था। सांप्रदायिक भावनाएँ इनहि आकांशाओ का उत्पाद थी। मध्य वर्ग का उदय नवजागरण कि पहचान के रूप में मान लिया गया है। हिन्दी नवजागरण का भद्रवर्ग भी उच्च वर्णीय जतियों से आता था इलीलिए इसने सांप्रदायिक को प्रश्रय देने से परहेज नहीं किया। ग्राम्शी कि अवधारणा सही प्रतीत होती है जिस सामाजिक वर्ग को अपना वर्चस्व कायम करना होता है वह वर्ग अपनी वर्गीय इच्छाओं का राष्ट्रीयकरण करता है। इस प्रक्रिया में वह स्वयं ही राष्ट्रिय पहचान और सम्मान प्रपट कर लेता है। इस रूप में हिन्दी नवजागरण में हिन्दू परम्पराओं का विधिवत राष्ट्रीयकरण किया गया।

विषय सूची

1. भूमिका. 2. हिन्दी-उर्दू इलाके का नवजागरण और उन्नीसवीं सदी। 3. नागरी लिपि और हिन्दी आंदोलन। 4. राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद ' की भूमिका। 5. राजा शिवप्रसाद 'सितारेहिंद' के भाषाई प्रयोग और तत्यूगीन भाषाई राजनीति। 6. हिन्दी नवजागरण में राजा शिवप्रसाद का योगदान- एक आलोचनात्मक मूल्यांकन। उपसंहार तथा संदर्भ ग्रंथ सूची।

M.Phill. Dissertation

36. अनीता कुमारी

गृहशोभा, मेरी सहेली, वनिता और जागरण सखी, मार्च और मई 2022 का स्त्रीवादी अध्ययन-विश्लेषण।
निर्देशक: प्रो. सुधा सिंह

37. अरुण कुमार
हंस की तीन पुरुस्कृत कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन ।
निर्देशक: प्रो. श्यौराज सिंह

38. आशुतोष
थायलैंड की रामायण 'रामकिशन' के कथ्य एवं प्रदर्शन का लोक नाट्य रूप रामलीला के तत्वों के आधार पर सांस्कृतिक अध्ययन ।
निर्देशक: प्रो. चन्दन कुमार

39. काजल
आईनासाज़: स्त्री के अतीत और वर्तमान का सामाजिक संघर्ष ।
निर्देशक: प्रो. सुधा सिंह

40. काजल
'अग्निगर्भा' में स्त्री प्रश्न ।
निर्देशक: प्रो. अल्पना मिश्र

41. कौर (बलजिंदर)
गुलाम मंडी में किन्नर-विमर्श ।
निर्देशक: प्रो. पूरनचंद टंडन

42. चौहान (कंचन)
'आकाल में उत्सव' में किसान जीवन ।
निर्देशक: प्रो. स्नेह लता नेगी

43. ज्योति
'आदिभूमि' में आदिवासियों की सामाजिक-सांस्कृतिक समस्याएँ ।
निर्देशक: प्रो. राम नारायण पटेल

44. ज्योति कुमारी
डॉक्टर एन. सिंह द्वारा संपादित 'सर्वश्रेष्ठ दलित कहानियाँ: एक अध्ययन ।
निर्देशक: प्रो. संजय कुमार

45. झा (पूजा)
शिवमूर्ति की कहानियों में स्त्री-पत्रों की मनः स्थिति (विशेष संदर्भ- 'केशर कस्तूरी')।
निर्देशक: प्रो. विनोद तिवारी

46. तिवारी (सपना)
कृष्णा सोबती: परिवेश, सृजन और दृष्टि (संदर्भ: दूसरा जीवन – कृष्णा सोबती की जीवनी)।
निर्देशक: प्रो. विनोद तिवारी

47. नुखरा (चेतन कुमार)
'मुझें चाँद चाहिए' एवं 'अल्मा कबूतरी' की नायिकाओं का तुलनात्मक अध्ययन ।
निर्देशक: प्रो. निरंजन कुमार

48. नौंगोई (शिवानी)
व्यंग्य साहित्य में 'मतवाला' पत्रिका का योगदान ।
निर्देशक: प्रो. सुधा सिंह

49. पाठक (पुष्पेंद्र)
कोरोना महामारी के दौरान सोशल मीडिया की सामाजिक उपादेयता: विशेष संदर्भ पहली और दूसरी बार ।
निर्देशक: प्रो. निरंजन कुमार

50. प्रिया राज
उत्कोच उपन्यास में दलित चेतना ।
निर्देशक: प्रो. श्यौराज सिंह

51. पीयूष पुष्पम
नाग बोड्स कृत 'नर-नारी' नाटक में: स्त्री समस्या ।
निर्देशक: प्रो. कुसुमलता मालिक

52. प्रीति
''श्रीमंत शंकरदेव कृत 'रामविजय' नाटक के कथ्य और प्रदर्शन पद्धति का मूल्यांकन ।
निर्देशक: प्रो. चन्दन कुमार

53. बंसल (सतेन्द्र)
हिन्दी फिलोमों में चित्रित शिक्षा का व्यापारीकरण विशेष संदर्भ: 'सुपर 30' और 'व्हाय चीट इंडिया' का आलोचनात्मक अध्ययन ।
निर्देशक: प्रो. मंजु मुकुल काम्बले

54. भारती (सुषमा)
स्त्री-विमर्श के आलोक में जयशंकर प्रसाद का उपन्यास 'तितली'।
निर्देशक: प्रो. रामनारायण पटेल

55. मीणा (उमा)
चंद्रकांत देवताले की काव्यभाषा ।
निर्देशक: प्रो. मंजु मुकुल काम्बले

56. मीणा (बाबूलाल)
प्रताप सहगल के लघु नाटकों का रंगशिल्प ।
निर्देशक: प्रो. अनिल राय

57. मीणा (बलराम)
ग्रेस कुजूर की कविताओं में आदिवासी स्त्री चेतना।
निर्देशक: प्रो. रामनारायण पटेल

58. मीनाक्षी
संत पलटूराम के काव्य में अभिव्यक्त सामाजिक चेतना।
निर्देशक: प्रो. मोहन

59. मोहम्मद उबैश
जंसिता केरकट्टा की कविताओं में व्यक्त आदिवासी चेतना के स्वर (विशेष संदर्भ- ईश्वर और बाजार)
निर्देशक: डॉ . स्नेह लता नेगी

60. यादव (निरंजन)
एतेहासिक नाट्य परंपरा के विशेष संदर्भ में 'अंबेडकर और गांधी' नाटक का अध्ययन ।
निर्देशक: प्रो. कुसुमलता मालिक

60. रजत कुमार
ज्ञानदेव अग्निहोत्री कृत नाटक शुतुरमुर्ग में राजनीतिक चेतना ।
निर्देशक: प्रो. कुसुमलता मालिक

61. रेनू
स्त्री यौनिकता के प्रश्न और माधवी नाटक ।
निर्देशक: प्रो. सुधा सिंह

62. विजेयता
मुर्दहिया में चित्रित बालजीवन का अध्ययन।
निर्देशक: प्रो. श्यौराज सिंह

63. शर्मा (विकास)
घनानन्द एवं द्विजदेव के काव्य में प्रकृति एवं पर्यावरण ।
निर्देशक: प्रो. पूरनचंद टंडन

64. सिंह (गीतांजलि)
अज्ञेय की विभाजन संबंधी कहानियों की संवेदना और शिल्प।
निर्देशक: प्रो. निरंजन कुमार

65. सिंह (प्रशांत कुमार)
प्रेमचंद की 'कफ़न' और ओमप्रकाश वाल्मीकि की 'शवयात्रा' कहानियों का तुलनात्मक अध्ययन ।
निर्देशक: प्रो. श्यौराज सिंह

66. सिंह (यशवंत)
संत भीखा साहब की विचारधारा।
निर्देशक: प्रो. विनोद तिवारी

67. सुनील जी
शिवप्रसाद सिंह के 'भेड़िये' कहानी संग्रह का मनोवैज्ञानिक अध्ययन।
निर्देशक: प्रो. अल्पना मिश्र

68. सुरेन्द्र
मुट्ठी भर कांकर तथा घास गोदाम उपन्यासों में चित्रित दिल्ली के उजड़ते किसानों की मर्मकथा।
निर्देशक: प्रो. अपूर्वानंद

69. सूर्य प्रकाश
मुग़ल बादशाहों की सगुण भक्तिपरक कविताओं का सांस्कृतिक अध्ययन।
निर्देशक: प्रो. चन्दन कुमार

70. हरदिया (पुर्णिमा)
मुल्ला वजही की कुतुबमुश्तरी का आलोचनात्मक अध्ययन।
निर्देशक: प्रो. अनिल राय